भक्ति के नियम

१, भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२, यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३, अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४, जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे

५, बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६, लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा

७, लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८, जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी

९, पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय लेखक	पृष्ठ
१, वेदोपदेश	३१७
२, भगवद्भक्ति [ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा	३१८
३, सार्वभौम योग [ले० श्री पं० शिवप्रसाद जी शास्त्री	३२५
४, ईश प्रार्थना (कविता) [ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबाजी	३२८
५, राम राम जप [ले० बहिन जयदेवी	३२६
६, एकयोगी राज की युक्ति व अनुभव ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी	३३४
७, भगवद्भक्त सुदामा [ले० श्री मथमहेश श्री मिश्र बी० ए०	३३६
८, सन्त टालसटाय के विचार	३४१
९, सुख व शान्ति [सम्पादक	३४२
१०, वसन्त (कविता) [ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	३४५
११, शारीरकोपनिषद्	३४५
१२, प्राप्ति स्वीकार	३४६
१३, भजन	३४७

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३. वेदोपनिषद्	"	-)
४. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
५. ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥।
६ भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
७. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
८. सत्य शब्द संग्रह	"	।≡)
९. शब्दसंग्रह	"	)
१०. सारसंग्रह	"	≡)
११. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१२. भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१३. भगवदंक	"	॥।)
१४. गर्यांक	"	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

कृष्ण सखा-सह वन-भोजन।

कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमण्डलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः।
सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ५ } श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, चैत्र पूर्णिमा सं० १९८८ { अङ्क ७

वेदोपदेश

यत्र ज्योति रजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् । तस्मिन्मां
धेहि पवमानाना मृतेलोके अक्षत इन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ १ ॥

हे पवित्र स्वरूप सर्वानन्ददायक ! जहां निरन्तर तेज है जिस लोक में सुख स्थित है उस अमर नाश रहित लोक में मुझ को परमैश्वर्य प्राप्ति के लिये धारण कीजिये आनन्द वर्षाइये ॥ १ ॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरे धनं दिवः ।
यत्रा सूर्य ह्वतिरापस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ २ ॥

हे आनन्दप्रद देव ! जिस तुझ में सूर्य का प्रकाश प्रकाशमान हो रहा है जिस तुझ में द्युलोक अर्थात् बुरी कामनाओं की रुकावट है जिस तुझ में वह कारण रूप बड़े व्यापक आकाशस्थ प्राणप्रद वायु है उस अपने स्वरूप में मुझ को मोक्ष प्राप्त कीजिये परमैश्वर्य के लिये मुझ को प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिव लोका ।
यत्रा ज्योतिष्मन्तस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ३ ॥

हे भगवन ! जिस तुझ में इच्छा के अनुकूल विहरणा है, जिस तुझ में तीसरे स्वर्ग पर तीनों प्रकाश के ऊपर स्वतः प्रकाश करने वाले यथार्थ ज्ञान युक्त ज्योति स्वरूप ज्ञानस्वरूप प्रकाश वाले हैं। उस में मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिये, परमैश्वर्य के लिये प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र वृध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ४ ॥

हे दयालु आनन्द युक्त पारब्रह्म ! जिस तुझ में सम्पूर्ण आनन्द और सब कामना निष्कामना हो जाती हैं और जिस तुझ में अपना ही धारण और पूर्ण तृप्ति है उस रूप में मुझको मोक्ष प्राप्त किजिये और परमैश्वर्य के लिये अपना स्वरूप प्रकाशित किजिये ॥ ४ ॥

भगवद्भक्ति

गतांक से आगे

(ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी)

कथा अम्बरीष की ।

चक्रवर्ती महाराजा अम्बरीष परम भक्त थे । इन के गुण, दान तथा यज्ञों का यश पुराणों में प्रसिद्ध है। इन्द्रादि को भी जो कठिनाई से मिलते हैं, ऐसे सर्व सुख इनको प्राप्त थे, फिर भी इन्होंने उन सुखों में मन नहीं लगाया । भगवत् सेवा में इनकी प्रीति और श्रद्धा ऐसी थी कि भगवत् की सब कैंकर्यता अपने हाथ से ही करते थे, किसी दूसरे को करने नहीं देते थे और एकादशी व्रत की जो आज्ञा शास्त्र की है, इसको यथाविधि पूर्ण रीति से पालन करते थे, नवमी और दशमी के नियम और संयम के पश्चात् एकादशी व्रत करके जागरण किया करते थे और द्वादशी के दिन सब प्रकार के द्रव्य, वस्त्रादि और दान करके ब्राह्मणों को सब प्रकार के भोजन प्रसाद जिमा कर पीछे आप पारण करते थे।

एकबार दुर्वासा ऋषीश्वर आये। राजाने सत्कार और दण्डवत् करके भोजन के निमित्त उन से विनय किया। दुर्वासा ने स्वीकार कर लिया और स्नान करने चले गये। संयोग वश उस दिन द्वादशी दो घड़ी थी। राजा को पारण की चिंता

हुई। ब्राह्मणों की सम्मति और आज्ञा से उसने नारायण का चरणामृत पान कर लिया। जब दुर्वासाजी आये और उन्होंने यह वृत्तांत सुना, तो वे क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होकर राजा के मारने को उद्यत हुये और उन्होंने अपनी जटा से कालकृत्या नाम की अग्नि की ज्वाला उत्पन्न की और वह राजा को भस्म करने दौड़ी। हे मंसाराम! भगवत् तो प्रतिक्षण अपने भक्तों की रक्षा की चिन्ता में लगे रहते ही हैं, दुर्वासा के गर्व को न सह सके। भगवत् ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी। उसने पहिले तो कालकृत्या की ऐसी खबरली कि भस्म करके उसका नाम निशान तक मिटा दिया। फिर वह दुर्वासा की सेवा करने को दौड़ा। प्राण सब को प्यारे हैं। दुर्वासाजी प्राणों के भय से अयोगी के मन के समान भागने लगे! सुदर्शनचक्र ने इनको खदेड़ा! आगे २ दुर्वासा जी और पीछे सुदर्शनचक्र। ब्रह्मलोक शिवलोक आदि ब्रह्मांड भर में घूमे, लोकपाल, देवता आदिकों से विनय प्रार्थना करते फिरे परन्तु कोई भी उनकी रक्षा करने को समर्थ न हुआ। हे मंसाराम! इस में किंचित् भी संशय नहीं है कि भगवद्रोही को कोई रख नहीं सका। जब कहीं शरण न पाई तब दुर्वासा बैकुंठनिवासी विष्णु भगवान के पास गये और उनके यहाँ से यह उत्तर मिलाः—

उत्तर—हे दुर्वासा! यद्यपि मैं तुम्हारी रक्षा कर सक्ता हूं परन्तु विचारना चाहिये कि जो मेरे भक्त सब प्रकार का सुख छोड़ कर मेरे शरण हुये हैं और मेरे सिवाय जिन का कोई आश्रय नहीं है, उनका अपमान मुझ से कैसे सहा जाय? इसलिये मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सक्ता, तुम अम्बरीष की शरण जाकर अपराध क्षमा कराओ।

यह सुनकर दुर्वासा निराश हुये, राजा की शरण में आये और दण्डवत् प्रणाम करके 'त्राहि' 'त्राहि' पुकारे। राजाने स्तुति और प्रार्थना करके सुदर्शन को शीतल किया और दुर्वासाजी का मान सन्मान ऐसा किया कि वे सब दुःख भूल गये। हे मंसाराम! दुर्वासा जी एक वर्ष तक व्याकुल होकर भ्रमते रहे थे और राजा ज्यों का त्यों दया युक्त होकर एक स्थान पर खड़ा हुआ दुर्वासा के क्लेश का शोच करता रहा था। हे मंसाराम! भगवद्भक्तों को किसी के साथ वैर नहीं होता क्यों कि दृष्टि में यह जगत् भगवद्रूप है अथवा भक्तरूप है। पीछे राजाने दुर्वासा जी को भोजन कराया और आप भोजन किया। भक्तों की यह दयालुता देख कर दुर्वासा जी भक्तों का यश गाते हुये अपने आश्रम को चले गये।

मंसाराम—महाराज! भगवत् का प्रण है कि कैसा ही पापी शरण आवे अभय कर देता है। दुर्वासा शरण में गये, उनकी रक्षा न की, यह तो भगवान् के प्रण से विरुद्ध हुआ।

मस्तराम—भाई! यह संदेह तो दुर्वासा को उत्तर देते हुये भगवत् ने स्वयं ही दूर कर दिया है। यह बात ऊपर बता आया हूं। भगवत् शरणागत की अवश्य रक्षा करते हैं, यह ठीक है परन्तु भगवत् का यह वचन भी है कि सब पाप क्षमा करता हूं परन्तु दो पाप क्षमा नहीं करता, एक तो मेरे भक्तों का जो अपराध करे, इसे क्षमा नहीं करता, जैसे कि दुर्वासा ने किया था और दूसरा जो मेरे नाम का अपराध करता है अर्थात् इस विचार से पाप करता है कि पाप करने के पीछे भगवन्नाम या मंत्र जपकर शुद्ध होजाऊंगा। ऐसे का अपराध मैं क्षमा

नहीं करता। जब भगवत् का ऐसा वचन है तो प्रण में विरोध कहां हुआ ? यदि विचार कर देखा जाय तो प्रण में विरुद्धता है ही नहीं क्योंकि दुर्वासा अपने प्राणों की रक्षा हेतु भगवत् शरण हुये थे। प्राणों की रक्षा का उपाय भगवत् ने बता दिया और उनके प्राण बचगये तब संदेह को स्थान ही कहां है।

हे मंसाराम ! दुर्वासा जी पर राजा अम्बरीष को क्रोध नहीं आया था, वरु उन पर भगवत् का कोप हुआ था, इसलिये उन्होंने सुदर्शन चक्र को दंड देने की आज्ञा दी थी। यह शरणागति का प्रताप है कि दुर्वासा के प्राण बच गये, नहीं तो कहां दुर्वासा बिचारे और कहां उस प्रभु का क्रोध ! हे मंसाराम ! इस चरित्र का मुख्य भाव यह है कि भगवत् अपने भक्तों के अन्य किसी अपराध पर दृष्टि नहीं देते, किंतु भगवान की दृष्टि एक अहंकार पर तुरन्त होती है क्योंकि अहंकार ही भजन में विघ्न रूप है, इसलिये अपने भक्तों के गर्व को भगवान् तुरंत ही दूर कर देते हैं । गरुड़, मार्कण्डेय और नारद आदि की कथायें इस बात की साक्षी हैं। दुर्वासा जी को अपनी सिद्धता का गर्व हुआ था, इसलिये वे राजा की परीक्षा लेने गये थे। भगवत् ने उनका गर्व तोड़ने के लिये राजा की शरण में भेजकर उनका गर्व दूर किया।

हे मंसाराम ! इस चरित्र से भगवत् का एक उपदेश और भी मिलता है। वह यह है कि जब भगवत् ने दुर्वासा जी को शरण देने से निराश कर दिया तो दुर्वासा जी ने क्रोधित होकर भगवान् को शाप दिया और उस शाप के कारण से भगवान् को दश बार अवतार धारण करना पड़ा। इससे यह उपदेश मिलता है कि जब शरण न देने से ईश्वर को भी दश देह धारण करने पड़े तो अन्य शरण न देने वाले मनुष्यों की तो न मालूम क्या गति होगी ?

एक राजा की लड़की परम भगवद्भक्त थी। जब राजा अम्बरीष की भक्ति विश्व में विख्यात हुई, तो उस लड़की ने अम्बरीष से अपने विवाह के लिये एक मनुष्य भेजकर प्रार्थना की। राजाने उत्तर दिया कि हमको भगवत् सेवा से छुट्टी नहीं मिलती और हमको स्त्री की चाहना भी नहीं है। यह सुन कर लड़की अधिक प्रेमयुक्त होगई और बारंबार आग्रह करने लगी। उसके प्रेम वश होकर राजा आप तो न गये, उन्होंने अपनी तलवार भेज दी। तलवार से ही विवाह का सब नेगचार हुआ। जब यह लड़की रानी होकर आयी, तब उसके लिये एक महल अलग बनवाया गया और वह उसमें रहने लगी।

एक दिन रानी सबेरे ही राजा की पूजा का मन्दिर देखने गयी। राजा जगे नहीं थे। रानी मन्दिर बुहार लीप कर जल शुद्ध रख कर पूजा की सब सामग्री तैयार करके चली गयी। जब राजा पूजा करने आये तो सब सामग्री तैयार पायी। राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। बहुत दिनों तक ऐसा ही होता रहा। एक रात राजा जागता रहा और जब रानी आयी तो पूछा कि तू कौन है ? जो मेरी सेवा में चोरी करती है। उसने उत्तर दिया कि नयी दासी हूं। राजाने उसकी भक्ति देख कर आज्ञा की कि अलग सेवा किया करो। रानी सेवा करने लगी और ऐसी सेवा की कि राजा और भगवत् दोनों प्रसन्न होगये। हे मंसाराम ! इस रानी की विशेष कथा प्रेम निष्ठा में

वर्णन करूंगा। राजा की प्रसन्नता देख कर अन्य रानियां भी अलग २ भगवत्सेवा करने लगीं। सब का प्रेम देख कर राजा सब के महलों में जाने लगे। पुरवासी भी इसी प्रकार करने लगे। राजा उनके यहाँ भी जाने लगे। इस प्रकार सब नगर भगवत्परायण होगया। जब राजा भगवद्धाम को गये, तो सब अयोध्यावासियों को भी साथ ले गये।

अम्बरीष शुभ गाथ, चित्त में मोद बढ़ाती।
भगवत् में विश्वास, तथा श्रद्धा सिखलाती॥
दुर्वासा का गर्व, दूर भगवत् ने कीन्हा।
बचा दिया निज भक्त, शाप अपने शिर लीन्हा॥
भोला! भगवद्भक्तिकर, कर मत लेश प्रमाद रे।
कर प्रचार हरि भक्ति का अम्बरीष की याद रे॥

कथा रुक्माङ्गद की।

राजा रुक्माङ्गद की कथा एकादशी माहात्म्य और पुराणों में प्रसिद्ध है -उनकी एक फुलवारी ऐसी सुगंधित और शोभायमान थी देवताओं की स्त्रियाँ अप्सरायें वहां का सुख लेने को उतरा करती थीं, एक दिन उनमें से किसी एक के पैर में बेर का कांटा लग गया। इसकी अशुद्धता से वह उड़ न सकी। उसने माली की लड़की से कहा कि यदि किसी ने एकादशी व्रत किया हो, तो उसका फल मुझे दिला दे कि उसके पुण्य से मैं स्वर्ग में उड़ कर जा सकूँ। यह सुन कर माली की लड़की राजा के पास गयी। राजा ने आकर देवांगना से कहा कि यहां व्रत कोई नहीं जानता। देवांगना के बताने से राजा एक साहूकार की लड़की को, जो मारने से एकादशी के दिन भूखी प्यासी रह कर जागती रही थी, बुलवाया और उसका पुण्य देवांगना को दिलवा दिया। देवांगना स्वर्ग को चली गयी। राजाने सारे नगर में ढौंडी पिटवादी और सब नगर वासी यहां तक कि हाथी घोड़े भी एकादशी के दिन उपवास करने लगे। अन्त में सब नगर वासियों सहित राजा वैकुंठ गया। राजा की लड़की एकादशी व्रत की ऐसी निष्ठायुक्त थी कि एकादशी के दिन उसका पति आया और देखा देखी उसने भी व्रत रख लिया। जब भूख से विकल होकर उसने भोजन मांगा, तो लड़की ने भोजन न दिया क्योंकि वह एकादशी का माहात्म्य भली प्रकार जानती थी। दोचार घड़ी में उसका पति मर गया और भगवद्धाम को चला गया। लड़की ने बड़ा उत्सव मनाया और स्तुति करते २ वह भी भगवद्धाम को चली गयी एकादशी माहात्म्य में ऐसी २ और भी बहुत कथायें हैं।

कुं–रुक्मांगद की कथा सुन, को न करे उपवास।
फल लेकर देवांगना, गयी इन्द्र के पास॥
गयी इन्द्र के पास, शक्ति उड़ने की आयी।
नगर किया उपवास, अन्त सब शुभगति पायी॥
दम्पति कर उपवास प्राप्त कीन्हा अक्षय पद।
भोला! कर उपवास, यथा कीन्हा रुक्मांगद॥

कथा राजा शिवि की।

पुराणों और महाभारत में प्रसिद्ध है कि राजा शिवि दयावान, दानी, शरणागत पालक और धर्मात्मा थे। इन्होंने अश्वमेधादिक बहुत से यज्ञ करके ब्राह्मणों को विविध प्रकार के दान दिये थे। भगवत् की प्रेरणा से इन्द्र को यह इच्छा हुई कि इनकी दया और शरणागत वत्सलता की परीक्षा लेनी चाहिये। अग्नि देवता को कबूतर बनाकर

इन्द्रने आप बाज का रूप धारण किया कबूतर बाज के भय से कांपता हुआ राजा के वस्त्रों में घुस गया। राजा और बाज में बहुत वाद विवाद हुआ। बाज कहे कि मेरा आहार मत छीनिये। राजा कहे कि शरण में आये हुये की रक्षा न करना अधर्म है। अन्त में कबूतर के बराबर राजा अपने शरीर का मांस देने पर राजी होगया। जब मांस पलड़े में काट कर धरा गया तो कबूतर का पलड़ा न उठा! मांस काट २ कर धरते रहे, कबूतर के पलड़े ने धरती न छोड़ी! तबराजा अपना शिर काट कर धरने लगा यह देखते ही दोनों देवता प्रकट हुये, वरदान देकर और स्तुति करके और शरीर जैसा था वैसा करके चले गये, भगवद्भक्त भी भगवत् रूप ही हैं, जो कुछ करें आश्चर्य नहीं है!

कं-शरणागत त्यागा नहीं, दीन्हा अपना मांस।
शिर तक भी देने लगे, शिविराजा शाबाश॥
शिविराजा शाबाश, बाज को दीन्हा परीक्षा।
पारावत को प्राण दया की हमको शिक्षा॥
भोला! हो निर्वैर, वैर काहू से कर मत।
शिवि त्यागी शिर आप, नहीं त्यागा शरणागत॥

कथा भवन की।

भवन राजपूत चौहान उदयपुर के राना के यहां दो लाख रुपये की पदवी वाले भगवद्भक्त दयावान और साधु सेवी थे। एकबार राना के साथ शिकार खेलने गये। एक गर्भिणी हरिणी के बच्चे सहित उनकी तलवार से दो टुकड़े हो गयी! इनको बड़ी दया और लज्जा आई, इस प्रकार विचारने लगे।

ओ हो! बड़े शोक की बात है, भगवद्भक्तों में तो मैं प्रसिद्ध हूं और मेरे आचरण भगवद्विमुखों के से हैं।

ऐसा विचार उसी समय से लोहे की तलवार रखना छोड़ दिया, एक काठ की तलवार रखने लगे। मूठ उसकी लोहे की बनवाली, जब कभी दरबार में जाते, इसी को लेकर जाते। एक पट्टेदार भाई को यह बात मालूम होगयी, उसने राना के कान में कह दी। जब राना को उसका विश्वास न आया, तो वह सौगन्द खाने लगा। राजा ने फिर भी एक वर्ष तक इस बात का निर्णय नहीं किया। जब चुगलीखोर ने हठ की कि यदि मैं झूठा ठहरूं तो गर्दन काटली जाय, तब राजा ने एक स्थान पर सभा की और उस में उत्तम २ सेवक एकत्र हुये। पहिले राना ने अपनी तलवार निकाल कर दिखायी, फिर बारी २ से सब अपनी २ तलवार दिखलाने लगे। जब भवन महाराज की बारी आयी तो तलवार निकाल कर कहना चाहते थे कि चाहे जो कुछ कीजिये, मेरी तलवार तो दारु अर्थात् काठ की है परन्तु भगवत् की इच्छा से ये शब्द मुख से निकले 'देखलीजिये, सार यानी फौलाद की है'। इतना कह कर जब तलवार को मियान में से खींचा तो ऐसा मालूम हुआ कि हजार बिजली एक साथ बादलों में कौंधने लगी हों। उसके उजाले और तड़प से सब की आंखे बन्द होगईं! राना कहने लगे कि मारो अभागे चुगल के शिर पर! यह सुन कर भवन विनय करने लगे कि महाराज उसने मिथ्या नहीं कहा, तलवार वास्तव में लकड़ी की है, भगवत् इच्छा से फौलाद की हो गयी है। राना ने भक्ति का विश्वास किया, चाकरी के परिश्रम से छुट्टी देकर जागीर का पट्टा सदा के लिये लिख

दिया और विनय की की यदि आप दर्शन दिया करेंगे तो मेरा कल्याण हो जायगा ! हे मंसाराम ! काठ की तलवार फौलाद की होगयी, यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। भगवद्भक्तों की इच्छा और वचन तलवार से अधिक हैं, जिन वचनों से पापियों के पापों की सेना को मार कर भक्तिदेश का निष्कंटक राज्य देदेते हैं, जहां मुक्ति भी पानी भरा करती है।

कुं—गाथा ठाकुर भवन की, करती मन आल्हाद।
भगवद्भक्ति प्रताप से, काठ हुआ फौलाद ॥
काठ हुआ फौलाद, चुगल मन में घबराया।
सच्ची कह कर बात भुवन ने उसे बचाया ॥
भोला ! भय दे त्याग, झुका भक्तों को माथा।
जप भगवत् का नाम लिखा कर हरिजन गाथा ॥

कथा रांका की।

परम भगवद्भक्त रांका जाति के कुम्हार थे। अपनी जाति वृत्ति से जो कुछ कमाते, हरिभक्तों की सेवा में लगा देते थे। एकबार इन्होंने कच्चे बर्तनों का आंवा तैयार किया, किसी कारण से दिनमें आग न लगा सके। रात के समय एक बिल्ली हालके जने हुये बच्चों को एक कच्चे बर्तन में रख कर चली गयी। रांकाजी को वह बात मालूम न थी सवेरे ही इन्होंने आग लगा दी। जब आग तेज हो गयी तब इन को मालूम हुआ। विकल होकर बच्चों के निकालने का उपाय करने लगे परंतु कुछ न हो सका। बिचारे शोक से रुदन करते हुये भगवत् से प्रार्थना करने लगे कि हे भक्तवत्सल ! रक्षा कीजिये। हे मंसाराम ! यदि रांकाजी का सब घर जल जाता और उनके प्राणों पर भी संकट आजाता, तो भी वे भगवत् से कुछ न कहते क्योंकि भगवद्भक्त अपने स्वामी से मुक्ति तक की याचना नहीं करते, तो अन्य तुच्छ वस्तुओं की तो बात ही क्या है। बिना मांगे ही भक्तों की इच्छा पूर्ण हो जाती है, भगवत् से माँगने का कुछ प्रयोजन ही नहीं है। भक्तों की करुणा और दया पर दृष्टि देना चाहिये कि तुच्छ जीव का दुःख भी नहीं सह सके और विकल अवस्था में नहीं करने का काम भी कर बैठते हैं। जब भगवत् ने अपने भक्त की विकल दशा देखी तो यह चरित्र किया कि सब आंवां तो पक गया और जिस बर्तन में बच्चे थे, वह कच्चा रह गया, उष्णता तक न पहुंची ! रांकाजी उन बच्चों को कुशल देख कर बदन में फूले नहीं समाये और भगवत् को अति प्रेम से दंडवत् प्रणाम करने लगे। तब से कुम्हारों में नियम है कि आंवा बनाते ही आग लगा देते हैं।

कुं—रांका भगवद्भक्तवर, कुंभकार कुलभूप।
दया अहिंसा युक्त है, इनका चरित अनूप ॥
इनका चरित अनूप, दया का पाठ पढाता।
धर्म अहिंसा मुख्य, सर्व से श्रेष्ठ बताता ॥
घड़े पके नहि बाल हुआ बिल्ली का बांका।
भोला ! हिंसा त्याग, यही सिखलाते रांका ॥

कथा केवल राम की।

केवलराम जी ऐसे परम भक्त और भगवद्धर्म के प्रवर्तक थे कि जिन लोगों ने भक्ति, भगवत्, गुरु और भक्तों के नाम को भी नहीं जाना था, उनलोगों को पवित्र करके भगवत् संमुख कर दिया, यह सुख दुःख, मित्र शत्रु को समान जानते थे, तिलक माला धारण किये रहते थे, नवधाभक्ति के दृढ भक्त थे,

भगवच्चरणों में निष्काम प्रीति रखते थे, लोगों पर दया और कृपा करके बिना कारण ही लोगों के घर पर जाया करते थे, श्रीकृष्ण स्वामी की सेवा करने और उनके नाम में मन लगाने का दान माँगा करते थे, भगवद्धर्म सब को समझाया करते थे, जहां कहीं दस बीस साधु देखते, तो उन को शालग्राम जी और भगवत् मूर्ति अपने पास से देकर पूजा सेवा की रीति बताया करते थे। एक बार बनजारे ने अपने बैल की पीठ पर कोड़ा मारा, स्वामी जी बेसुध होकर धरती पर गिर पड़े। लोगों ने दौड़ कर उठाया और उनकी पीठ देखी तो साठ कोड़ों के निशान पीठ पर स्पष्ट दिखाई दिये सबको आश्चर्य हुआ! ऐसी दया की रीति आजतक सुनने में ही नहीं आयी!

कुं—दानी केवल रामजी, भगवत् चरणन रक्त
दान मांगते भक्ति का, यद्यपि परम विरक्त॥
यद्यपि परम विरक्त, भक्तिका पाठ पढ़ाते।
पूजा सेव रीति, दया करके सिखलाते॥
पिटता देखा बैल, देह की सुरति भुलानी,
भोला! ऐसे भक्त, सुने नहीं ज्ञानी दानी॥

कथा हरिव्यास की।

हरिव्यास जी ऐसे भगवद्भक्त हुये कि देवताओं तक को अपना चेला करके भगवद्भक्त बना दिया। इन को भक्तों से ऐसी प्रीति थी कि कभी उनसे अलग नहीं होते थे और जिस प्रकार राजा जनक ऋषीश्वरों के सत्संग में रहा करते थे, इसी प्रकार यह भी रहा करते थे। साधुओं की सेवा करने वाला इनके समान कोई विरला ही हुआ होगा भगवत् और भक्तों के चरित्रों के सिवाय अन्य किसी में मन नहीं देते थे। एक बार चरथावल ग्राम में हराभरा बाग देख कर टिक गये और इच्छा की कि भगवत् की सेवा पूजा करके भगवत् प्रसाद बनावेंगे। उसी बागमें एक दुर्गा का मन्दिर था। किसी ने वहां बकरा मारा। यह देखकर हरिव्यास जी को करुणा आयी और उनके मनमें बहुत ही व्यथा हुई। भूखे प्यासे भजन करते रहे। दुर्गा महारानी भगवद्भक्त के दुःख को न सह सकी, साक्षात् होकर कहने लगीं कि भगवत् प्रसाद बनाओ। हरिव्यास जी ने उत्तर दिया कि जहां ऐसा अन्याय होता हो, वहां रसोई कैसे होसकती है? दुर्गा ने कहा कि मेरे ऊपर दया करके अपराध क्षमा करो और भगवन्नाम का उपदेश देकर मुझे और इस नगर को पवित्र करो। हरिव्यासजी ने सोचा कि दुर्गा के चेले होने से सब लोग सन्मार्गी हो जांयगे। ऐसा सोचकर दुर्गा को भगवन्नाम का उपदेश दिया। जब दुर्गा वैष्णव होगयी तो सब नगर को वैष्णव बनाना उचित समझा। ग्राम के मुखिया को रात के समय पलंग पर से गिरा दिया और कहा कि यदि अपना भला चाहता है, तो हरिव्यास जी का सेवक होकर भगवद्भक्ति अंगीकार कर, नहीं तो सब नगर को नष्ट कर दूंगी। तुरन्त ही मुखिया सहित सब नगरवासी हरिव्यास जी के चेले होकर भगवद्भक्त हो गये। वाह! वा!! वाह!!!

कुं—भगवत्सेवी भक्त वर, स्वामी श्री हरिव्यास।
देवीकूं चेली किया, ग्राम किया हरिदास॥
ग्राम किया हरिदास, भक्ति भगवत् की फैली।
पापी हुये कृतार्थ, भई शुचि बुद्ध मैली॥
भोला! समता सीख द्वेष काहू से करमत।
भगवत में सब देख, देख सब में ही भगवत्॥

सार्वभौम योग

गतांक से आगे ।

(ले० श्री पं० शिवप्रसाद जी शास्त्री)

सिद्धासन ।

बायें पांव की एड़ी, गुदा और अण्डकोश के बीच में जो स्थान है उसमें दृढ़ता से लगाओ और दाहिने पांव की एड़ी लिङ्गेन्द्रिय के स्थान में या उसके ऊपर के भाग में दृढ़ता पूर्वक लगाओ। चिबुक (ठोडी) कण्ठ मूल से नीचे हृदय स्थल में लगाओ, मेरु दण्ड को सीधा करके स्थिर होकर बैठो, हाथ दोनों घुटनों पर सीधे या उलटे रक्खे हों, दृष्टि भ्रुकुटि के मध्य में या नासिका के अग्रभाग में रहे शरीर पर्वत की भांति अचल रहे हिलने न पावे यह आसन प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि के काम में आता है इससे काम वासना नहीं रहती कम से कम तीन घंटे इससे बैठने का अभ्यास करना चाहिये गृहस्थियों को यह आसन थोड़ा करना चाहिये।

पद्मासन ।

दाहिने पैर को बाईं जङ्घा पर और बायें पैर को दाहिनी जंघा पर रक्खो, दोनों पांवों के घुटने ठीक जमीन पर जमे रहें फिर दोनों हाथों को उत्तान करके घुटनों के पास जंघाओं पर रक्खो, पीठ कमर ग्रीवा और मेरुदण्ड सीधा और समरेख में, रहे दृष्टि भ्रकुटि के मध्य में या नासाग्र पर रहे इसे पद्मासन कहते हैं। इससे विचार शक्ति, और बुद्धि होती है तथा मन और प्राण पर अधिकार प्राप्त होता है।

पश्चिमोत्तान-आसन ।

दोनों पांवों को दण्डे की भांति सीधे सामने फैला दो फिर पांवों के दोनों अंगूठों को दोनों हाथों की अंगुलियों से पकड़ो, पुनः सिर घुटनों पर रक्खो यह पश्चिमोत्तान आसन हुआ। ध्यान रहे कि घुटने जमीन से उठने न पावें तथा हाथ भी सीधे तने रहें और उदर भीतर को खिंचा रहे। इसमें उदर जितना अधिक भीतर खींचा जायगा उतना ही अधिक लाभ होगा यह बैठ कर किया जाता है। इसी को खड़े होकर करने से स्थित पश्चिमोत्तान होता है और सोकर करने से सुप्त पश्चिमोत्तान बनता है। इसके फल अनन्त हैं पर सर्व नाड़ियों की शुद्धि करता है, क्षुधा प्रदीप्त करता है, उदर के समस्त रोग दूर करता है, प्लीहा और यकृत को निर्दोष बना कर उदर कृश और सुन्दर बनाता है।

मयूरासन

दोनों हाथों को, हथेलियों के बल जमीन में रक्खो फिर दोनों हाथों की कोहनी मिलाकर नाभी में लगाओ, पांव पीछे और सिर को आगे करके कोहनियों पर ही शरीर को दण्डे के समान सीधा संभाल कर रक्खो, जिस प्रकार मयूर खड़ा होता है ठीक उसी प्रकार यह आसन बन जाता है। इसीलिये इसे मयूर कहते हैं। इसमें केवल हथेलियां ही जमीन पर रहती हैं शेष समस्त शरीर अधर रहता है, यह आसन जठराग्नि को अत्यन्त प्रज्वलित करता है, क्षुधा अत्यन्त लगाता है, थोड़ा पानी पीकर करने से

तत्काल शीघ्र जाता है इससे पेट के समस्त रोग अच्छे होते हैं।इस आसन के समान उदर को निरामय करने वाला दूसरा आसन कोई नहीं है। यह प्रथम १-२ मिनिट बड़ी कठिनता से होता है ५-१० मिनिट प्रति दिन करने से कदन्न भी पच जाता है। इसके विषय में आचार्य्यों ने इस प्रकार लिखा है:-

> हरति सकल रोगानाशुगल्मो दरादी ।
> नभिभवति च दोषा नासनं श्रीमयूरम् ॥
> बहुकदशनभुक्तं भस्म कुर्यादशेषम् ।
> जनयति जठराग्नि जारयेत्कालकूटम् ॥ १ ॥

अर्थ-यह आसन वायुगोला आदि उदर के समस्त रोगों को शीघ्र ही हरण कर लेता है तथा और भी सम्पूर्ण वात पित्त, कफ आदि दोषों का तिरस्कार करता है। ज्वार, मक्का, बाजरा आदि कदन्न तथा अधिक अन्न खालेने से उसको भी भस्म कर देता है, जठराग्नि को बढ़ाता है। इस आसन से जठराग्नि इतनी बढ़ जाती है कि विष भी खा लिया जाय तो वह भी भस्म हो जाता है।

सर्पासन

प्रथम उदर के बल जमीन पर सो जाओ, पश्चात् दोनों हाथों को हथेलियों के बल नाभी के समीप रख नाभी से ऊपर का भाग ऊपर सांप के फन की भाँति उठाकर रक्खो, नाभी से नीचे का समस्त शरीर का भाग ज्यों का त्यों जमीन पर पड़ा रहे यह आसन उदर के लिये बहुत लाभदायक है।इससे वीर्य रक्षा भी होती है, स्वप्नदोष का रोग नष्ट हो जाता है।

उत्थित-पद्मासन।

पद्मासन लगाकर दोनों हाथों की हथेलियां जमीन पर रख कर उनके ही बलपर शरीर को उठा रक्खो। इस आसन से हाथों में बल की वृद्धि होती है।

कुक्कुटासन

कुक्कुटआसन- पद्मासन लगाकर दोनों हाथों को जांघों और पिंडुरियों के बीच से निकालो और फिर पंजे जमीन पर स्थिर करके उन्हीं के बल शरीर को अधर उठा रक्खो यह कुक्कुटासन कहाता है। इससे हाथों में अद्भुत् शक्ति आती है जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा शरीर में स्फूर्ति आती है।

विपरीतकरणीमुद्रा।

पृथिवी पर चित्त सो जाओ फिर दोनों पांव उठाकर आकाश की ओर सीधे खड़े करदो। दोनों हाथ कमर पर लगाओ कन्धे और उससे ऊपर शरीर के भाग पर समस्त शरीर का भार रहे, समस्त शरीर ऊपर आकाश की ओर सीधा तना हुआ हो।केवल कन्धे से ऊपर का भाग पृथिवी पर रहे।हनु वक्षस्थल में लगा रहे। यह विपरीतकरणी मुद्रा कहाती है। यह मुद्रा शरीर को अमृत की भांति लाभ पहुंचाती है, मस्तक के समस्त रोग, हृदय के रोग, उदर के रोग गुदा के रोग, और, अण्डकोष वृद्धि का रोग, वीर्य के रोग इसके अभ्यास से समूल नष्ट होकर रक्तशुद्धि तथा नाड़ी शुद्धि होती है। इसका क्रम से अभ्यास करना चाहिये। शक्ति रहते पर भी पहिले थोड़ा करना चाहिये। प्रातः सायं, पन्द्रह पन्द्रह मिनिट प्रतिदिन करने से कुछ दिन में इसका लाभ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।निरन्तर २-३ वर्ष अभ्यास करने से सफेद बाल काले हो जाते हैं तथा वृद्धावस्था की सिकुड़ी हुई शरीर की त्वचा पुनः खिच जाती है

और वृद्ध भी तरुण सा हो जाता है इससे प्राण शक्ति बढ़ती है।

शीर्षासन।

शिर के बल खड़े होने को शीर्षासन कहते हैं। नीचे एक ८-१० अंगुल मोटा गुदगुदा गदेला अथवा धोती या कपड़े की गुदड़ी बनाकर रक्खो और उसके ऊपर सिर रखकर समस्त शरीर आकाश की ओर सीधा खड़ा करो सिर नीचे पाँव ऊपर सीधे समरेख में रहें। हाथ दोनों सिर के पीछे के भाग में लगाओ, कुहनियां पृथिवी पर लगी रहें यह शीर्षासन हुआ। इसके अनेक भेद हैं, इसी प्रकार हाथ के पञ्जों के बल खड़े होने को वृक्षासन कहते हैं, इसी में पद्मासन लगाकर खड़े होने को वृश्चिक आसन कहते हैं, जो विपरीत करणी के लाभ हैं वही इसके भी लाभ हैं। इस आसन से बहुत् आरोग्यता प्राप्त होती है सर्व रोगों का ह्रास होता है वीर्य की ऊर्ध्वगति होकर वीर्य शरीर में ही खपने लगता है ब्रह्मचर्य्य की रक्षा होती है, प्राणों पर स्वाधीनता प्राप्त होती है। इसका निरन्तर अभ्यास करने वाला स्थिरयौवन को प्राप्त होता है।

शवसान।

आकाश की ओर मुख करके सोधे दण्डे की समान चित्त लेट जाने को शवासन, प्रेतासन या मृतासन करते हैं। इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बातें यह हैं कि शरीर का कोई भाग कड़ा न रहे, सब अवयव ऐसे शिथिल बना दिये जांय कि मानों उनमें जीव ही नहीं रहा। जैसे कछुआ अपने सिर तथा हाथ पांव समेट कर अपनी खोपड़ी में छिपा लेता है उसी प्रकार शरीर की समस्त शक्ति को समेट कर आत्मा में ले जाओ यहां तक कि मन में भी किसी प्रकार का संकल्प न उठे मन को नितान्त शून्य बना डालो और फिर आंखें बन्द करलो किन्तु नींद न आने पावे १५-२० मिनिट इस प्रकार पड़े रहो। इस आसन से आप के शरीर में अद्भुत शक्ति और स्फूर्ति तथा शान्ति का विकाश होगा इस आसन से थाकन बिलकुल जाती रहती है, इस आसन के साथ यदि दीर्घ श्वासोच्छ्वास लिया जाय तो अति उत्तम हो किन्तु उसके लेने में शरीर के किसी भी अवयव को कुछ श्रम न करना पड़े और न शरीर का कोई अवयव तनने पावे, श्वास और उच्छ्वास समान रहें तथा इतने शनैः शनैः लिया जाय कि उसका शब्द अपने कान तक भी न सुनाई दे श्वास की समानता किसी मन्त्र या संख्या से जानी जा सकती है। श्वास समान होजाने पर उससे भी ध्यान हटा लेना चाहिये।

स्वस्तिकासन

दोनों पावों के तलुवे दोनों जङ्घाओं और पिंडुरियों के बीच में रखकर बैठने को स्वस्तिकासन कहते हैं। यह आसन अत्यन्त सरल है मनुष्यमात्र इसको कर सकता है। उपासना के उपयोगी है और सुख कर है।

सिद्धासन, पद्मासन और स्वस्तिकासन, इन तीन आसनों में से एक कोई आसन उपासना के लिये प्रत्येक हिन्दू को अवश्य सिद्ध कर लेना चाहिये। क्योंकि बिना आसन के उपासना करने से मन की स्थिरता नहीं होती और बिना मन को स्थिर करके उपासना करने से समय ही व्यर्थ व्यय होता है कुछ फल प्राप्त नहीं होता। तीन

धरे एक आसन सुख पूर्वक जब बैठ सके, देह में किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव न हो तब समझना चाहिये कि आसन सिद्ध होगया। महर्षि ने आसन सिद्धिका यह उपाय बतलाया है कि प्रयत्न की शिथिलता अर्थात् शरीर को चेष्टा रहित करने और अनन्त अर्थात् आकाश या अनन्तशायी विष्णु भगवान् में अनन्यचित्त से ध्यान लगाने से आसन सिद्धि होती है, आसन सिद्ध होने से अङ्गमें जयत्व आदि योग के सम्पूर्ण विघ्नों की शान्ति हो जाती है और मन तथा शरीर स्थिर होकर योग के उपयोगी बनता है तथा द्वन्द्वों की बाधा का नाश हो जाता है अर्थात् शीत उष्ण, हर्ष शोक, सुख दुःख और भूख प्यास, आदि उसे बाधा नहीं पहुंचा सकते।

अपूर्ण

---

* ईश-प्रार्थना *

त्रिभंगी छन्द

(ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी)

१

जय जय परमेश्वर, जय जगदीश्वर, परम पिता हितकारी।
निजजन संरक्षक, अवगुण भक्षक, शोक मोह भयहारी॥
जय करुणा सागर, शुभगुण आगर, शरणागत सुखकारी।
निर्गुण गुणधारी, स्ववश विहारी, मायापर अविकारी॥

२

हे प्रभु करुणा कर, हम सब मिलकर चरण कमल सिर धरते।
निजमति अनुसारी, हे असुरारी, विनय आप से करते॥
अन्तर्यामी, अगजग स्वामी, नम्र विनय सुन लीजे।
हे सर्व प्रकाशक, सत्पथदर्शक, प्रभु ऐसा वर दीजे॥

३

ऋषि मुनि दर्शाया, वेदन गाया, सत्पथ हमको भावे।
प्रभुपद अनुरागें, विषयन त्यागें, भोग न भूल सुहावे॥
प्रभु के गुण गावें, प्रभु हि मनावें, करें आपकी पूजा।
प्रभु कूं ही यावें, प्रभु ही सांचे, देव न जाने दूजा॥

४

प्रभु होउ सहायक, सुर मुनि नायक, चरण छोड़ कहां जावें।
हैं आप हमारे, मात्र सहारे प्रभु चरणन शिर नावें॥
हम दास तुम्हारे, तुम रखवारे, भक्त प्रतिज्ञा पालक।
पावन से पावन, दोष नशावन, श्रेय मार्ग संचालक॥

५

अवगुण हर लीजे, शुभ गुण दीजे, स्वामी कुमति निवारो।
सत्पथ दिखलाओ, कुपथ छुड़ाओ, भव सागर से तारो॥
जे भक्त तुम्हारे, अति ही प्यारे, उनका मार्ग सुझाओ।
जे लम्पट भोगी, तन मन रोगी, इनसे हमें बचाओ॥

६

तुम मात पिता हो, तुम्ही सखा हो, गुरु प्रेरक अविनाशी।
दीजे शुभ शिक्षा कीजे रक्षा, शरणपाल सुखराशी॥
हे विश्व प्रकाशी, घट घट वासी, दृढ़ निर्मल मति दीजे।
प्रभु को ही जानें, अन्य न मानें, निर्भय निर्मम कीजे॥

७

हम होंय तुम्हारे, आप हमारे, प्रभुको ही नित ध्यावें।
मन में प्रभु चिंतन, नयनन दर्शन, इन्द्रिय थिरता पावें॥
हो प्रीति हमारी अव्यभिचारी, प्रभु जय होय तुम्हारी।
मन प्राणन प्यारे, नयनन तारे, रक्षा करो हमारी॥

८

हों क्रिया हमारी, चेष्टा सारी, प्रभु चरणों में अर्पित।
सब ही हों प्यारे, प्राण हमारे, कभी न हों हम दर्पित॥

गंभीर विमल मति, मन उदार अति, सबके ही शुभचिंतक।
हों पर उपकारी, नहिं अपकारी, नहिं हिंसक नहिं निन्दक॥

९

प्रभु भक्ति प्रचारें, जन्म सुधारें, पावन तत्व विचारें।
सन्मय, ज्योतिर्मय, शाश्वत सुखमय, पद पंकज उरधारें॥
हे पाप निवारक, दीनोद्धारक, अस उदार मति दीजे।
जे दीन दुखी जन, निर्बल निर्धन, देखि उन्हें मन भीजे॥

१०

मन वाणी तन से, सच्चे मन से, उनके होंय सहायक।
प्रेरक परमात्मन्, हे विश्वात्मन्, वर दीजे वर दायक॥
यदि होवे पीड़ा, मानें क्रीड़ा, दुखको भी सुख जाने।
प्रभु प्रेम मगन मन, वश इन्द्रियगण प्रभु चरनन लिपटाने॥

११

हों सब के हितकर, हे प्रेमाकर, सबको अपना जाने।
आधार हमारा, सुखकर सारा, मित्र सभी को माने॥
प्रभु हैं पद दाता, भक्त त्राता, मायाधीश अमाया।
तव शक्ति अपरिमित, अपार अगणित, पार न कोई पाया॥

१२

जो कुछ भी चाहा, सोई पाया, प्रभु द्वारे जो आया।
षट् शास्त्र बताये, वेद बनाये, सब कुछ हमें सिखाया॥
अज एक अरूपा, शुद्ध स्वरूपा, नाम रूप बहुधारी।
तुमको ही ध्यावें, तुम्हें मनावें, अन्तिम विनय हमारी॥

१३

पूरण सो कीजे, स्वभक्ति दीजे, चरण कमल बलिहारी।
जय जय जय शङ्कर, जय जय जय हर नमो नमः त्रिपुरारी॥
भूमा बतलाया, 'भोला' गाया, भाई बहिनें गावें।
अक्षय सुख पावें, शोक नशावें, अजर अमर हो जावें॥

राम राम जप

[लेखिका श्री बहन जयदेवी जी]

लक्ष्मी—बहिना पार्वती! तुम्हारे मोहल्ले में बहुत से बहिन भाई हैं। प्रायः सभी सदाचारी, ईश्वर, भक्त और धर्मात्मा हैं परन्तु तुम सा प्रसन्न वदन और सुखी कोई देखने में नहीं आता! हे वरानने! जब देखो तब तेरा मुख कमल सा खिला ही दीखता है, कभी तुझे उदास मैंने नहीं देखा! तेरे पास बहुत सी बहिनें कथा सुनने आती हैं, वे भी प्रायः प्रसन्न देखने में आती हैं परन्तु तुम सी हंसमुख कोई नहीं है। मेरे मैके में तो सब रोती झींकती ही देखने में आती हैं, किसी को प्रसन्न नहीं देखा! सब रोती सूरत! कोई किसी से लड़ रही है। कोई किसी को कोस रही है, कोई दूसरे के बच्चों को देख कर जली ही जाती है। कोई किसी का धन देख कर कुढ़ रही है, कोई गहने पाने के लिये पति से आये दिन कलह करती रहती है, कोई ज्येठानी दौरानी से रूठ जाती है। दो दो दिन रोटी नहीं खाती, कोई दौरानी ज्येठानी से कलह कर बैठती है। आप रोती है, उसे रुलाती है, घर वालों का दम नाक में कर देती है! सारांश यह है कि सब किल किल मैं मैं करती ही देखने में आयी। हमारे मोहल्ले में भी प्रायः सब ऐसी ही हैं! इस मोहल्ले में तो मैंने सुना है कि सब बहिनें साध्वी और भाई सज्जन हैं, सब मिल जुल कर रहते हैं, प्रथम तो झगड़ा

टंटा करते ही नहीं हैं और कदाचित् हो भी जाता है, तो सब मिल कर फैसला कर लेते हैं! बहिन! एक बात आज मैं तुझ से पूछना चाहती हूं, बचपन में तो तुझे माता पिता ने पढ़ाया लिखाया नहीं, अब तेरे बहिनोई ने मुझे कुछ पढ़ा दिया है परन्तु पढ़ा हुआ याद नहीं रहता, इसलिये मैं स्वयं उदास रहती हूं और उन्हें भी प्रसन्न नहीं कर सकी! यद्यपि वे बहुत ही सज्जन हैं, परमेश्वर करे, ऐसे स्वामी सब को मिलें, दिन भर पाठ पूजा और भजन में ही लगे रहते हैं! विषय भोग न तो उन्हें सुहाता है, न मुझे अच्छा लगता है, संतान की भी हमें इच्छा नहीं है, क्योंकि ईश्वर की देन है। मनुष्य के हाथ की बात नहीं है! धन की कमी है नहीं, इतना ही चाहती हूं कि जो पढ़ूं याद रहे, विस्मरण न हो, ईश्वर भजन में लग जाऊं गीता आदि रामायण, भागवत् पढ़ लिया करूं! बोल! मुझे क्या करना चाहिये?

पार्वती–(प्रसन्न होकर) बहिन! इसका बहुत सहज उपाय है, इसके लिये मत तप, राम राम जप! जप यज्ञ सब यज्ञों में श्रेष्ठ है, न इसमें हिंसा होती है, न पैसा कौड़ी खर्च करना पड़ता है, न सामग्री एकत्र करनी पड़ती है। न दूसरे की सहायता की अपेक्षा है, न विशेष बुद्धि की आवश्यकता है। मात्र जीभ हिलाने का काम है, अभ्यास से जीभ हिलाना भी, बन्द होजाता है, 'हर्र लगैना फिटकरी रंग झकाझक आय' यह कहावत है। कम खर्च वाला नशीन, काम खर्च भी नहीं, मन स्वाभाविक राम २ जपा करता है। खर्च कुछ नहीं, मेहनत कुछ नहीं, और फिर भी फल इस का बहुत है। भगवान् स्वयं गीता में श्रीमुख से कहते हैं कि यज्ञों में जपयज्ञ मैं हूं। फिर इससे बढ़कर अन्य प्रमाण क्या होगा? बहिन! काम का जप करने से प्राणी काम रूप हो गये हैं और राम का जप करने से राम रूप हो जाते हैं, इस में किंचित् भी संशय नहीं है। जो जिस को जपता है, वह ही हो जाता है। श्रुति भगवती कहती है कि जैसा, क्रतु यानी निश्चय वाला होता है वैसा ही हो जाता है। भगवत् ने भी कहा है कि जैसे जो मुझे भजता है, वैसे ही मैं उसको भजता हूं। बहिन! जप से निश्चय दृढ़ हो जाता है, इसलिये राम राम जप।

बहिन! मैं ने भी बचपन में कुछ नहीं पढ़ा था, जप के प्रभाव से पढ़ना लिखना मुझे सब आगया है। बहिना! तेरे समान मैं भी उदास रहा करती थी, छाती पर एक भारी पत्थर सा जमा हुआ था, अंधेरा घुप्प रहता था! कोई कहता कि हृदय में ईश्वर का ध्यान किया कर, तो मेरी समझ में ही नहीं आता था कि कैसे ध्यान करूं? हृदय काम ही नहीं देता था, फिर ध्यान कैसे हो? कहीं पत्थर में मुख थोड़ा ही दीखता है, मुख तो स्वच्छ दर्पण में दिखायी देता है, पत्थर किसी का आकार भी धारण नहीं कर सका, पिघला हुआ धातु ही सांचे के आकार का हो जाता है। फिर कठोर और काले हृदय में ध्यान होना संभव ही कैसे था! इसलिये मैं बहुत उदास रहती थी। एक दिन एक संन्यासी महात्मा मेरे घर पर आये। मैंने उनसे अपना सब वृत्तांत कहा वे मुसकरा कर कहने लगे–कल्याणी! राम राम जप! श्रद्धा विश्वास से राम राम जप! अवश्य कल्याण होगा! राम नाम के प्रभाव से पत्थर तैरने लगे थे, तो तेरा हृदय द्रवित होने में क्या संदेह है?

हे बहिन ! इतना कह कर संत जी तो चले गये और जैसे केमरे में फोटो खिंच जाता है, इसी प्रकार उनके वचन मेरे हृदय में अंकित होगये। संत तेजस्वी थे और उन्होंने ये वचन इस ढंग से कहे थे कि मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि राम राम जपने से निश्चय मेरा कल्याण होगा । उसी दिन से मैं उठते, बैठते चलते फिरते, सोते काम करते जप करने लगी । जब अवसर मिलता तो एकांत में बैठ कर जपती, नहीं तो घर का काम काज करते, न्हाते धोते जपा करती । ऐसा करनेसे थोड़े दिनों में मेरी छाती पर जो एक भारी शिल सी रक्खी हुई थी, पानी होकर बह गई और मेरी छाती हलकी होगई। कुछ दिन के और अभ्यास से अंधेरा दूर हो गया और मेरे हृदय में प्रकाश होने लगा। अब तो उदासी चिंता भाग गई और मेरा मन प्रफुल्लित रहने लगा। अब तो मैं जो कुछ सुनू तुरत याद करलूं. कठिन से कठिन सूक्ष्म से सूक्ष्म बात मेरी समझ में आजाय फिर मैंने पढ़ना आरंभ किया, लड़कों को पाठ सुनाने के बहाने से बुला लूँ, उनका पाठ सुना करूं, और आप याद किया करूं प्रथम छोटी २ पुस्तकें पढ़ने लगी, फिर रामायण पढ़ी, भागवत् पढ़ी गीता पढ़ी, वेदान्त के ग्रन्थ पढ़े। धर्म शास्त्र पढ़े, बहिन ! क्या कहूं अब तो ईश्वर की कृपा से, सब कुछ पढ़ने लगी ! हे बहिन ! तू भी पढ़ने लगेगी। राम राम जप

हे बहिन ! मेरी देखा देखी मोहल्ले की और बहिनें भी ऐसा ही करने लगी, सब बहिनें मेरे पास कथा सुनने आती हैं और नियम से राम राम जपती हैं। बहिनों ने अपने पति, भाई, बच्चों को भी सिखा दिया है, वे सब भी ऐसा ही किया करते हैं। जिनको पहिले राम नाम पर विश्वास नहीं था और कहा करते थे कि शास्त्रकारों ने राम नाम की महिमा प्रौढोक्ति से बढ़ा २ लिख दी है, वे भी राम२ जपते हैं। नवीन बालक ही नहीं, किंतु बड़े ग्रेजुएट जो पश्चिमी शिक्षा को ही उत्तम मानते थे, वे भी मन लगाकर निरंतर जप करते हैं। कई के नाम ये हैं-बाबू छैल बिहारी लाल सिशनजज, मुंशी गोविन्द-स्वरूप एम० ए० एल० एल० बी० बैरिस्टर हाई कोर्ट, पण्डित मथुरा प्रसाद, शास्त्री प्रिंसिपिल महाराजा कोलेज, कुंवर कन्हैं सिंह रईस, प्राइम मिनिस्टर इत्यादि सब सत्कार पूर्वक राम नाम जपते हैं, तू भी बहिन! राम राम जप

हे बहिन ! उपरोक्त तो मनुष्य हैं, उनका तो जप करना मुख्य कर्तव्य ही है। नादबिन्दु के कर्ता समर्थ योगेश्वर काशी निवासी शिवजी भी राम नाम जपा करते हैं और उसी के बल के बल से काशी निवासी छोटे बड़े जीवों को मुक्ति प्रदान करते हैं। शिवजी की आज्ञा से जगदीश्वरी पार्वती जी का भी राम नाम जीवन प्राण है। राम नाम के प्रभाव से गणेश जी सब देवताओं में प्रथम पूजे जाते हैं। हनुमान जी ने तो अमूल्य रत्नों की माला के एक २ मणिके को राम नाम देखने के लिये फोड़ डाला था और पश्चात् अपने रोम २ में राम नाम अंकित दिखा दिया था। प्रल्हाद जी ने राम नाम के प्रभाव से जड़ खम्बे में से नृसिंह भगवान् को प्रकट कर दिया था। देवर्षि नारद का राम नाम आधार है। जाम्बवान, सुग्रीव, विभीषण आदि राम नाम के प्रभाव से भगवान् के पार्षद हैं। वाल्मीकि जी उलटा राम नाम जप कर त्रिकालज्ञ हो गये थे। इनके सिवाय बहुत से राम नाम के भक्त प्रसिद्ध

हैं, इनकी गणना करना शक्ति से बाहर है। योगी जन राम नाम के प्रभाव मोह रूप निद्रा में भी जागते रहते हैं, इसलिये राम राम जप!

हे बहिन! राम सब में रमण करते हैं। इस लिये राम कहलाते हैं अथवा सबको अपने में रमण कराते, हैं इसलिये राम कहे जाते हैं, अथवा योगियों के हृदय में रमण करते हैं। इसलीये वेदवेत्ता उनको राम कहते हैं। सकल चराचर जगत् की उत्पत्ति राम से होती हैं, राम में जगत् की स्थिति है और राम में ही अंत में सब जगत् लय हो जाता है। राम ही सत्य यानी त्रिकालाबाधित हैं, राम ही चित् स्वरूप यानी ज्ञान मूर्ति हैं, राम ही आनन्द रूप हैं इसलिये वेदवेत्ता राम को सच्चिदाघनन्द कहते हैं। राम अव्यय, शाश्वत, निर्विकारी, मायातीत हैं, फिर भी अपनी माया शक्ति से विश्व की रचना करते हैं। ब्रह्मा होकर राम जगत् को उत्पन्न करते हैं। विष्णु होकर पालन करते हैं और रुद्र होकर संहार करते हैं, रामही बाराह, मत्स्य, कूर्म, वामन, कृष्णादि अवतार धारण करते हैं। राम की महिमा अपार है, कोई पार नहीं पा सका, जो राम नाम जपते हैं, वे माया से पार होजाते हैं, इसलिये राम राम जप!

यद्यपि भगवान् के सब नाम एक से ही हैं, कोई कमती बढ़ती नहीं है, इसलिये किसी को श्रेष्ठ मानना और किसी को कनिष्ठ दोष रूप है, फिर भी भक्तों ने रामनाम को श्रेष्ठ माना है। नारद जी ने भगवान् से राम नाम के श्रेष्ठ होने का वर मांग लिया है। यह रामायण से प्रसिद्ध है। शिवजी ने समस्त विष्णु के नामों से राम नाम की श्रेष्ठता कही है, इसमें पुराण प्रमाण रूप है। राम नाम से व्याकरण की रीति से ओंकार सिद्ध होता है। जैसे ओंकार में अ, उ, और म तीन अक्षर हैं, इसी प्रकार राम में र आ और म, तीन अक्षर हैं, इसलिये दोनों की एकता है। जैसे ओंकार में अकार ब्रह्मा रूप है, उकार विष्णु रूप है मकार रुद्र रूप है और अमात्र परमेश्वर रूप है, इसी प्रकार राम में रकार ब्रह्मा रूप है, आकार विष्णु रूप है, मकार रुद्र रूप है और मकार में गुप्त आकार परमात्मा रूप है अथवा रकार जाग्रत् अवस्था रूप है, आकार स्वप्न अवस्था है। मकार सुषुप्ति अवस्था है और गुप्त अमात्र तुरीय अवस्था है। रकार अग्नी का बीज है, आकार भानु का बीज है, मकार चन्द्रमा का बीज है और अमात्र तीनों का अधीष्ठान है, इस प्रकार ॐकार के समान राम अपर और पर ब्रह्मरूप है, इसलिये! राम राम जप!

हे बहिन! भगवान शंकर के शिष्य भारती के भर्ता सुरेश्वराचार्य का कथन है कि सब विश्व परमात्म स्वरूप है, इस लिये सब नाम परमात्मा के ही हैं। इस लिये हे बहिन! वैष्णव भले ही विष्णु को नारायण अच्युत, जनार्दन नाम से भजें, शैवी शिव का शंकर महेश नाम से भजन करें, गाणपत्य भले ही गणपति का विघ्नेश, एकदन्त, विनायक नाम से स्मरण करें, सौरि भले ही सूर्य को आदित्य, भास्कर नाम से जप करें, शाक्त भले ही शक्तिका शिवा, भवानी, अम्बिका नाम से पूजन करें, बौद्ध भले ही बुद्धदेव का सुगत, लोक-जित जिन नामसे अर्चन करें, मुसलमान भले ही खुदा को बंदगी करीम, रहीम, हक नाम से करें, और ईसाई भले ही गोड (God) से लोर्ड (Lord) औलमायिटी (Almighty) मोस्ट सुप्रीम (Most Supreme) नाम से प्रार्थना करें अपने को कोई आग्रह नहीं

है, सब राम के ही नाम हैं परंतु मुझे तो राम नाम प्यारा है। राम नाम को ही मैं जपती हूं, इसलिये तुमसे भी कहती हूं, राम राम जप!

हे बहिन! राम का कोई नाम नहीं है और राम के सब नाम हैं। राम कला रहित हैं। इसलिये निष्कल कहलाते हैं, राम कोई क्रिया नहीं करते, इसलिये निष्क्रिय कहे जाते हैं, राम में किसी प्रकार का विक्षेप नहीं है, इसलिये वेदवेत्ता उनको शान्त कहते हैं, राम में कोई दोष नहीं इसलिये ब्रह्मवेत्ता उनको निरवद्य कहते हैं, राम में किसी प्रकार की माया नहीं है, इसलिये तत्वदर्शी उन को निरंजन नाम से पुकारते हैं, राम का किसी से संग वाली संबंध नहीं है, इसलिये योगी उनको असंग कहते हैं, राम तीनों शरीरों से रहित हैं, इसलिये अनंग कहलाते हैं, राम सर्वदा एक रस हैं, इसलिये ध्रुव कहलाते हैं, राम सब से पूर्व के हैं, इसलिये ऋषि उनको पुराण कहते हैं, राम तीनों काल में विद्यमान हैं, इसलिये मुनि उनको सनातन कहते हैं, राम शुद्ध ज्ञान स्वरूप हैं, इसलिये चिन्मात्र कहलाते हैं, राम की दृष्टि का कभी लोप नहीं होता, इसलिये सिद्ध पुरुष उनको द्रष्टा अथवा दृक कहते हैं, उन्ही राम का मैं जप करती हूं, हे बहिन! तू भी राम राम जप!

हे बहिन! राम कोई क्रिया नहीं करते, फिर भी सब कुछ करते हैं, राम सबके श्रोत्रोंसे सुनते हैं, इसलिये श्रोत्र के श्रोत्र कहलाते हैं, राम सबके नेत्रों से देखते हैं, इसलिये चक्षु के भी चक्षु कहलाते हैं। राम सब की त्वचा से स्पर्श करते हैं, इसलिये छूने वाले कहलाते हैं, राम सब स्वाद लेते हैं, इसलिये चखने वाले कहलाते हैं, राम सब को घ्राण से सूंघते हैं, इसलिये सूंघने वाले कहलाते हैं! हे बहिन! बिना मुख के ही राम महान् वक्ता हैं, बिना हाथ के ही महाकर्ता हैं। बिना पैरों के ही चलते हैं! प्राणी को राम ही चलाते हैं, मन में बैठ कर राम मन्ता हो जाते हैं, बुद्धि में स्थित होकर बोद्धा बन जाते हैं, चित्त में विराजमान होकर चिन्तवन करते हैं और अहंकार में प्रवेश करके अभिमान करते हैं! सब कुछ करते हुये भी कुछ नहीं करते, यह बात राम भक्त ही जानते हैं, दूसरों की समझ में यह बात नहीं आती! जब राम नाम जप किया जाता है, तो छओं चक्र विकसित हो जाते हैं, सर्वत्र राम ही दिखायी देने लगते हैं- इस लिये राम राम जप!

हे सुलोचने! प्रमाद रहित होकर जप करने से राम रूप मंत्र राज के प्रसाद से शीघ्र ही सिद्धि होती है, राम मंत्र सर्व सिद्धि का करने वाला है। जैसे खांड में मिठास है, चन्द्रमा में जैसी चांदनी है, इसी प्रकार राम नाम में ब्रह्मांड सहित पूर्ण ब्रह्म विराजमान है। जैसे योग्य साधनों के संयोग से बीज में से वृक्ष निकल आता है, इसी प्रकार योग्य साधनों के संयोग से राम नाम में से राम निकल आते हैं। हे बहिन! सब प्राणियों में मनुष्य उत्तम है, मनुष्य ही केवल मंत्र को जप सकता है, इसलिये मोक्ष कामी पुरुष को सर्वदा मंत्र का जप करना चाहिये, इसलिये राम राम जप!

हे बहिन! मंत्र को सिद्ध करूंगा, अथवा देह को त्याग दूंगा' इस प्रकार के भाव से निरन्तर मंत्र का जप करना चाहिये। अभ्यास योग से मंत्र स्वाभाविक होजाता है और योगी के चित्त में स्वप्न में भी मंत्र की धारा बहने लगती है। रक्त में, प्राण में मंत्र नृत्य करने लगता है और देह के सब

परमाणु मंत्रमय हो जाते हैं। पश्चात् बाहर भी सब वस्तुयें मंत्र गान करती हुयी सुनायी देती हैं। पर्वतों में से मंत्र की गूंज आती है। गंगा यमुना नदियां मंत्र की ध्वनि करती हैं, वृक्षों में से मंत्र सुनायी देता है, कोकिला, मोर, हंस, सारस आदि पक्षी मंत्र उच्चारण करते हुये सुनायी पड़ते हैं। पश्चात् साधक दशरथनन्दन राम राम को चन्द्र-मंडल में देखता है, लीलामय कौशल्या आनन्द वर्द्धन को नदियों के जल में देखता है, वायु में हिरन के पीछे दौड़ते हुये राम दिखायी देते हैं! चलते हुये पथिकों में दंडकारण्य विहारी राम दर्शन देते हैं! महान् संग्राम में खरदूषणारी राम हंसते हुये दिखाई पड़ते हैं, महान रुधिर से भरे हुये समुद्र में रावणारी राम विलास करते हुये दृष्टि आते हैं! इस लिये राम राम जप!

हे कल्याणी! तमोगुण की विशेषता से किसी का मन मूढ़ सा होता है और किसी का मन रजोगुण की विशेषता वाला होने से विक्षिप्त यानी बहुत से विषयों में भटकने वाला होता है। राम नाम के जप से धीरे २ तम, रज शान्त हो जाते हैं और सतोगुण का आविर्भाव होता है, तब मन न तो मूढ़ रहता है और न भटकताही है किन्तु एकाग्र रहता है, तब पढ़ा हुआ झट समझ में आता है और उसका विस्मरण भी नहीं होता, यह अनुभव की बात है। विद्वानों का वचन है कि जप परम तप है, जप परमधर्म है, जपपरमयज्ञ है। कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो जप से प्राप्त न हो किन्तु सब वस्तुयें जप से प्राप्त हो सकती हैं। लोक परलोक के पदार्थों की तो बात ही क्या है, जप से पर ब्रह्म तकको प्राप्ति हो जाती है, प्राप्ति ही क्या होजाती है, अहंता, ममता ने परब्रह्म को ढांक रक्खा है, एक विदुषी अपनी सुशीला बेटी को इस प्रकार समझाया करती थीः-

कुं:-जपरी! जपरी! राम जप, जप री! सादर राम।
सदा निरंतर राम जप, पावेगी विश्राम॥
पावेगी विश्राम, पाप मल सब धुल जावे।
महा वाक्य गुढार्थ, समझ में झट ही आवे॥
जयदेवी! जप राम, यही है उत्तम जपरी।
यह ही पावन धर्म, राम क्षण २ में जपरी॥

इसलिये हे बहिन! तेरा कल्याण हो, अधिक क्या कहूं, मन लगाकर राम राम जप!

लक्ष्मी पार्वती के वचनानुसार श्रद्धा सहित राम २ जप ने लगी और अन्त में परम सुखी हुई! बोलो, मायापति, जगत्पति, सीतापति, रघुपति, अयोध्यापति राम की जय!

एक योगी राज की युक्ति व अनुभव

(ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी)

मेरी तीन मूर्तियां हैं-एक तो स्थूल रूप है जिसमें प्राणों के ढांचे पर देह का कोश मंढा हुआ है। दूसरा सूक्ष्म रूप है जिसमें पंच शक्तियां प्राणों को चलाती हैं। तीसरा कारण रूप है जो अनुभव का लक्ष्य है। पहिले रूप का स्थान चिदु ग्रन्थि है, दूसरे का चिदाभास और तीसरे का चिदाकाश है। चिदुग्रन्थि में देह का अभिमानी रहता है, चिदाभास में लिंग शरीर का ज्ञाता बसता है और चिदाकाश में साक्षी चैतन्य निवास करता है।

चिद्ग्रन्थि को उस प्रतिबिम्ब के सदृश समझना चाहिये जो किसी चमकते हुए धातु के टुकड़े में मुखके देखने से पड़ता है और धातु के रंग के लिये रहता है। चिदाभास को उस प्रतिबिम्ब के समान जानना चाहिये जो जल में मुख को देखने से हिलता हुआ प्रतीत होता है। चिदाकाश उस निश्चल प्रतिबिम्ब के तुल्य है जो दर्पण में मुख को देखने से बनता है और सब रंगों को यथावत् दर्शाता है।

मेरी स्थूल मूर्ति स्पंद रूप वायु है जिसकी क्रिया मरुत देवता के आधीन है, मेरी सूक्ष्म मूर्ति प्राण शक्ति है जिसका रूप निस्पंद है। मैं अधिष्ठाता हूं और मेरे कारण स्वरूप का स्वामी रुद्र है, जिसकी गति समाधिस्थ है। इन तीनों मूर्तियों में मेरी पांच पांच शक्तियां समान, प्राण, अपान, व्यान और उदान के भेद से प्रसिद्ध हैं।

स्थूल मूर्ति का वर्णन यह है। मेरे देहमें एक पवन श्वास होकर चलता है, परन्तु वह क्रिया रूप और स्थान के विभाग से पांच भांति का माना जाता है। सब से पथम समान वायु है जो निश्चल होकर आकाश का रूप धारण करता है और सब के गमन को सिद्ध कराता है, उसका नाभि में स्थान है जहां से आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है।

दूसरा प्राण वायु है जिसकी क्रिया अपक्षेपण है, अर्थात् बाहर के पवन को देह के अन्दर खींचना, जिसका पवन रूप और हृदय स्थान है।

तीसरा अपान वायु है। जिसकी क्रिया उत्क्षेपण है अर्थात् देह के अन्दर का पवन ऊपर को निकालना, जिसका रूप अग्नि और गुदा स्थान है।

चौथा व्यान वायु है। जिस की क्रिया प्रसारण यानी पवन का देह के अन्दर सर्व अंगों में प्रवेश कराना है, जिसका रूप जल और ललाट स्थान है।

पांचवा उदान वायु है जिसकी क्रिया आकुंचन है यानी देह के सर्व अंगों में से पवन को सिकोड़ना और जिसका रूप पृथ्वी और स्थान कंठ है।

मनुष्य देह कोएक भाप के समान जानना चाहिये, जिसमें सब से नीचे अपान वायु अग्नि का काम देती है, समान वायु भांडा बनाती है और प्राण वायु जल का कार्य सिद्ध कराती है। इन तीनों के व्यापार से जो भाप उठती है वह शिर के ढकने में एकत्र होकर देह के सब अंगों में फैलती है और उसका नाम व्यान कहा जाता है। जब भाप का कार्य हो चुकता है तब वह द्रव रूप सिमट कर ढकने पर बिन्दुओं को उत्पन्न करती है इसी का नाम उदान वायु है।

यथार्थ में प्राण अपान दो शक्तियां है, उदान और व्यान उनकी दो युक्तियाँ हैं, प्राण का संबन्ध उदान से और अपान का व्यान के साथ है। जैसे जल में से मिट्टी के परमाणु बैठा करते हैं और अग्नि भाप को उठाती है, इन चारों का अधिष्ठान समान वायु है, जो आकाशवत् निर्लेप रहता है, जिसमें से मेरी आकर्षण शक्ति बाहर की प्राण वायु को देह के अन्दर खेंचती है, खेंच के समाप्त होते ही मेरी अपान शक्ति पवन को देह से बाहर निकालना आरम्भ कर देती है, इस प्रकार श्वास के आवागमन से एक चक्र बन्ध जाता है जो लुहार की धौंकनी के समान रात दिन चलता है और क्षण भर नहीं ठहरता इसी अवस्था का नाम जीवन है।

श्वास को अन्दर खींचते हुए बाह्य पदार्थों का संग चैतन्य के साथ इन्द्रिय गोचर द्वारा होता है और श्वास के बाहर की ओर निकलते हुए चैतन्य के रूप का प्रतिबिंब विश्व में भासता है, इन्हीं दोनों क्रियाओं की समता में वाणी की उत्पत्ति होती है और इन के परस्पर घिस्से से जठराग्नि निकलती है, जिस करके अन्न पचता है, पाँचों पवनों को प्राण इसलिये कहते हैं कि पवन तत्व का निज रूप प्राण है। अन्य में और तत्वों का अंश मिश्रित होता है, प्राण वायु पिण्ड और ब्रह्मांड दोनों में संपूर्ण व्यापक है। यदि पिण्ड की वायु का ब्रह्मांड की वायु से सम्बन्ध टूट जावे, उसी क्षण देह का तत्काल पात हो जाता है।

समान के अवकाश में अन्य चार पवनों का सम्बन्ध इस प्रकार है कि अपान से मित्रता, उदान से शत्रुता और व्यान से समता है। अपान का प्राण से मित्र भाव, व्यान से शत्रु भाव और उदान से सम भाव है। व्यान का उदान से मित्रता, अपान से शत्रुता और प्राण से समता है। उदान का व्यान से शत्रु भाव, और उदान से सम भा है। व्यान का उदान से मित्रता, अपान से शत्रुता और प्राण से समता है। उदान की व्यान से मित्रता प्राण से शत्रुता और अपान से समता है।

इन चारों पवनों का पृथक् भाव होने पर भी एक पिण्ड में निर्वाह करना मेरी सहायता और भय से बनता है, यानी प्राण से वायु अपान से पित्त और व्यान से कफ उत्पन्न होकर उदान रूपी देह की स्थिति होती है। इन्हीं पवनों का समूह होने पर संकल्प उठता है और मन का अभ्यास चिद् ग्रन्थि में होता है।

प्राणों के संयोग से पांच उप प्राण उपजते हैं, जिन्हें नाग, देवदत्त, कूर्म, कृकल और धनंजय कहते हैं। नाग से डकार आती है, देवदत्त से जंभाई आती है, कूर्म से पलक खुलते और मिचते हैं, कृकल से भूक लगती है और धनंजय मृत्यु के होने पर देह को फुलाता है।

समान वायु पिंड और ब्रह्मांड में आकाशवत् व्यापक है और नीचे की चार वायु उसमें से उत्पन्न होती हैं।

प्राण वायु ब्रह्मांड में पवन होकर चलती है और पिण्ड में श्वास होकर बाहर से अन्दर को जाती है।

अपान वायु ब्रह्मांड में अग्निज्योति हो कर रहती है और पिण्ड में जठराग्नि बनकर श्वास को अन्दर से बाहर की ओर फेंकती है।

व्यान वायु ब्रह्मांड में चन्द्र ज्योति होकर रहती है और पिण्ड में भाप बन कर रुधिर को नाड़ियों में घुमाती है और देह का पोषण करती है।

उदान वायु ब्रह्मांड में परमाणु के रूप से ठहरी है और पिण्ड में स्थूलाकार बना है जिससे सब कर्मेन्द्रियों के कार्य सिद्ध होते हैं।

ब्रह्मांड और पिंड दोनों में पांच पवन का खेल हो रहा है परन्तु उन पवनों का व्यवहार स्थान भेद से ब्रह्मांड में एक प्रकार का और पिण्ड में दूसरी भाँति का बिम्ब प्रतिबिम्बवत् है। वास्तव में पंच प्राणों का सूक्ष्म आकार है और पंचमहाभूत उन्हीं की स्थूल मूर्ति हैं अन्य वस्तु नहीं।

मेरी सूक्ष्म मूर्ति जो शक्ति रूप है, जिसकी क्रियाओं की पहिचान अभ्यास करने पर होती है।

पिण्ड और ब्रह्मांड में पंचप्राण शक्तियों का व्यवहार इसी से होता है।

प्राणों की गति पर आन्तर्य दृष्टि रखने से अभ्यासी को पवन की चाल मंद होती हुई प्रतीत होती है और अन्त में समान रूप से ठहरी हुई भासती है, तब वह प्राण शक्तियों की उन क्रियाओं का अनुभव करता है जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। यानी प्राण पवन के निस्पंद रूप होते ही द्वंद्व मिट जाता है और चिदाभास का लक्ष्य पहिचाना जाता है, जिसमें चैतन्य की स्वतंत्रता और जड़ रूपी देह की परतंत्रता भली प्रकार दिखाई देती है। अन्य शब्दों में यों कहना चाहिये कि चैतन्य के आधीन मन और इन्द्रियों के सर्व व्यापार निश्चित होते हैं और समान वायु के स्थान से प्राण शक्ति के उदय होते ही जगत् सूझ पड़ता है, अपान शक्ति के अस्त होते ही संसार लय हो जाता है। उदय का रूप दिन और अवस्था जाग्रत है, अस्त का रूप रात्रि और अवस्था स्वप्न है।

जाग्रत अवस्था में श्रुति ब्रह्मांड की ओर प्रकाशवत् फैली हुई होती है, स्वप्न में अनुभव का तेज पिण्ड के अन्तर ऐसा भासता है जैसे किसी घट के बीच में दीपक बल रहा हो। वृत्ति के बहिर्मुख होने का नाम उदय और अन्तर्मुख होने का नाम अस्त कहा जाता है।

दिन रात में मनुष्य के श्वासों की संख्या २१६०० मानी गई है, उदय और अस्त के भेद दुगुणी अर्थात् ४३२०० होती हैं। मैं इस सूक्ष्म मूर्ति का अधिष्ठाता हूं, जैसे सूर्य का चक्षु में, चन्द्रमा का मन में, अग्नि का मुख में और दिशाओं का कानों में स्थान है, वैसे ही मेरा वासा प्राणों में है। जब उनके चक्र को चलाता हूं, तब सब देवताओं का उदय होता है और जब चक्र को रोक देता हूं तब वह सब प्राणों में लय हो जाते हैं, इस कारण से मैं सर्व देवताओं का राजा सिद्ध हुआ यानी इन्द्र हुआ। समान वायु मेरा सिंहासन है, प्राण वायु, दामिनी रूपी मेरा वज्र है, काले मेघों की सेना और श्वेत बादल मेरे ऐरावत हाथी हैं, मैं अपने वायु के दूतों को भेज कर समुद्र से चन्द्र ज्योति का कर (महसूल) उगाता हूं प्राण वायु के द्वारपालों के हाथ से सोम की वर्षा करके पृथ्वी की रक्षा करता हूं, इसी प्रकार मेरी सहायता से अन्य देवताओं का आराधन संभव होता है और सर्व मनुष्य मेरी आज्ञा का पालन करते हुए सुख और संपत्ति को पाते हैं, शुद्ध बुद्धि द्वारा आत्म स्वरूप के परमानन्द का लाभ उठाते हैं।

मेरी तीसरी मूर्ति जो कारण है उसका रूप समाधि है, उसका दर्शन जिज्ञासु को चिद् ग्रन्थि के खुलने और चिदाभास का रूप लय हो जाने पर होता है। यानी जब पहिली मूर्ति के अनुसार अजपा जाप का अभ्यास किया जाता है, दूसरी मूर्ति के अनुकूल श्रुति की धारणा की जाती है, तब इस तीसरी मूर्ति का लक्ष्य जाना जाता है। नाभि, हृदय और त्रिकुटी ध्यान के तीन स्थान हैं, उनमें नाभि द्वार प्राणों की स्पंद रूप क्रिया बनती है जिसमें श्रुति को शब्द पर लगाके ध्यान किया जाता है। दूसरा हृदय स्थान है जहां श्रुति का शब्द से एकता करने पर प्राणों का निस्पंद रूप हो जाता है और प्राण और अपान की शक्तियां तुली हुई प्रतीत होती हैं। तीसरा स्थान त्रिकुटी है, जिसमें स्पंद और निस्पंद दोनों रूप लय हो जाते हैं और एक विलक्षण सी

अवस्था प्रगट होती है, जिसका वर्ण लेखनी व वाणी से नहीं हो सकता परन्तु अभ्यासी पुरुष अनुभव कर सकता है।

दूसरी मूर्ति जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, जिसमें प्राण शक्तियां हैं जिनके परस्पर संबन्ध से मूर्ति के मध्य अर्थात् हृदय में चिदाभास रूपी ग्रन्थि ऐसी पड़ती है, जैसे दो रस्सियों में डेढ़ गांठ लगा कर फन्दा बनाया जाता है। एक रस्सी के प्राण और उदान नाम के सिरे ऊपर की ओर हैं और गांठ नीचे है, दूसरी रस्सी के अपान और व्यान नामी सिरे नीचे की ओर हैं, गांठ ऊपर है। मध्य में दोनों गाठों से जो फन्दा पड़ता है, वह चिदाभासकी ग्रन्थि अथवा लिंग शरीर है, जब तक यह ग्रन्थि बनी रहती है, तब तक प्राणों का आवागमन नहीं छूटता, परन्तु ग्रन्थि के खुलते ही प्राणी मोक्ष पदवी को प्राप्त होता है। इस ग्रन्थि का खोलना बल द्वारा नहीं बनता क्योंकि बल विधिसे वह और कड़ी हो जाती है, जैसे दल दल में फंसा हुआ पुरुष बल करने से और भी नीचे गड़ता है। यदि उसके खोलने का यत्न युक्ति सहित किया जावे तो वह खुल जाती है और पाँचों प्राणों के आकार पृथक् पृथक् अपने अपने अधिष्ठान में ऐसे दीप्तिमान होते हैं जैसे तीसरी मूर्ति के वर्णन में ऊपर दिखा चुके हैं।

श्रुति का रूप प्राण और अनुभव का रूप अपान है। प्राण द्वारा श्रुति अन्तरमुख जाती है और चैतन्य से स्पर्श करके अहंकार की भावना को उत्पन्न करती है। अपान द्वारा अनुभव बहिर्मुख आता है और जगत् का अभ्यास कराता है। श्रुति माया यानी प्रकृति का स्वरूप है और अनुभव ब्रह्म अथवा पुरुष का स्वरूप है, श्रुति और अनुभव का संयोग चिदाभास में ग्रन्थि रूप हो रहा है, "संगी ही लोक में बाँधा जाता है और निःसंगी मुक्त अमृत को भोगता है," जिसके खोलने के निमित्त दोनों के वेग को पलटा देना होता है, यानी अनुभव को अन्तरमुख और श्रुति को बहिर्मुख करने का नाम युक्ति है। ऐसा करने पर जब अशून्य रूप चिदाकाश में जगत् से चैतन्य का पृथक् भाव ज्ञान चक्षु द्वारा दीखता है, तब जगत् चैतन्य के प्रतिबिम्ब समान निश्चित होता है। इस में संदेह नहीं है।

सर्व महर्षि और महात्मा युक्ति अनुभव और प्रत्यक्ष तीनों से आत्म स्वरूप को सिद्ध करके इस अशून्य देश में सदैव विराजमान हैं। उनके दर्शन ऊपर की युक्ति द्वारा, चिदाकाश में प्राप्त होते हैं उनके स्वरूप का कथन युक्ति बिना जो श्रोत्र के आश्रय से किया जाता है उसको अनिश्चय समझना चाहिये। ऐसी अशून्य अवस्था में जगत् की अविद्या शक्ति का लय होजाता है, इसीलिये रुद्र को तीसरी मूर्ति का देवता माना है। जैसे अग्नि की एक चिंगारी को बार बार फूकने से चिन्गारी इतनी बलवान् हो सकती है कि सारे जगत् को जलादेने को पर्याप्त होती है, इसी प्रकार चैतन्य के अनुरूप में प्राणों की धौंकनी से ऐसी ज्ञानाग्नि उत्पन्न होती है जो संसार के अज्ञान रूपी फूस को क्षण भर में भस्म कर देती है।

इसलिये प्राणी मात्र को उचित है कि अपने में ज्ञानाग्नि येन केन प्रकार से उत्पन्न करे और महान् दुःख रूपी आवागमन के चक्र से हट कर अज्ञान रूपी संसार को भस्म कर अमृतभाव जो अपना आदि स्वरूप है प्राप्त हो।

भगवद्भक्त सुदामा

(ले० श्री मधुमङ्गल जी मिश्र बी० ए०)

मम्मटभट्ट ने काव्य प्रकाश में प्रतिपादित किया है कि कविता का प्राण रस है। अलङ्कारादि बाह्याडम्बर हैं। उनसे सौंदर्य बढ़ता है। उनने मुख्यता रस को दी है। कुछ लोग उक्ति विशेष को कविता कहते हैं यों तो साधारणतः सभी कोई बोलते हैं वह गद्य कहाता है, पर वहीं भाव शब्दों के व्यतिक्रम से कभी २ चमत्कार उत्पन्न करता है तब वह कविता कहलाता है। वर्ण मैत्री आदि सहायक हैं। जैसे:-

भागीरथी हम दोष भरे, पै भरोस यही है परोस तुम्हारे।

इन शब्दों द्वारा कवि अपनी आधीनता भागीरथी में श्रद्धा उनकी महत्ता आश्रयदायिता आदि गुणों को स्वीकार करता है। दोष, भरोस, परोस केवल वर्ण मैत्री दिखाके सौंदर्य लाते हैं। पर मुख्यता है उन भाव परम्पराओं की जो श्रद्धालु के हृदय में उत्पन्न होंगी। जिसे श्री भागीरथी में श्रद्धा भक्ति न होगी उसे इन पंक्तियों के श्रवण या पठन से कोई प्रसन्नता का उद्रेक संभव नहीं मान सकते।

कवि की विशेषता यही है कि वह मनो-मोदक भावों को खोजता और ऐसे शब्दों में प्रकाशित करता है कि विलक्षणता की उत्पत्ति हो। साधारण जन से यदि वह बन पड़े तो विलक्षणता का समावेश ही असंभव हो जावे।

कविवर नरोत्तम दास ने सुदामा की कथा हृदयग्राही पद्यों में की है। उनमें से कुछ पद्य यहां सुदामा की दीन दशा और सन्तोष के निर्देश के लिये उठाते हैं:- सुदामा की पत्नी कहती है:-

कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट तो चाहती न दधि दूध मठौती।
सीत व्यतीत भयो सिसियातहि हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥
जो जनतीं न हितू हरि सों तुम्हें काहे को द्वारके पेलि पठौती।
या घर तें न गयो कबहूं पिय टूटो तवा अरु फूटि कठौती॥
प्रीति में चूक नहीं उनके कछु मोको मिलैं हरि अंक लगाय कै।
द्वार गये कछु देहैं पै दे हैं वे द्वारिका नायक हैं सब लायक॥
बालन बीति गये पन द्वै अब तो पहुंचो बिरधापन आइकें।
जीवन केतक जाके लिये हरि को अब हूजै कनावड़े जाइकें॥
हूजै कनौड़ तू बार हजार हितू जो पै दीन दयाल सो पाइये।
तीनहु लोक के नायक हैं तिनके दरबार न जात लजाइये॥
मेरो कहो मन में धरिये प्रभु भूलिन और प्रसंग चलाइये।
और के द्वारे ते काज नहीं अब द्वारिका नाथ के द्वारे पै जाइये॥

जब ये पोटली में चावल बांधे द्वारिकानाथ के प्रासाद द्वार पर भीतर जाने की आज्ञा मांगते थे तब द्वारपाल भगवान को सूचना देता है:-

सीस पगा न, झंगा तनमें प्रभु जाने को आहि बसै किहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाय उपानह कोनहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा॥
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥

भगवान सुदामा संगी का नाम सुनते ही दौड़े आये और लिवा लेगये। भागवत में कहा है:-

तं विलोक्याच्युतो दूरात् प्रिया पर्यङ्कमास्थितः।
सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा॥
सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्ग सङ्गाति निर्वृतः।
प्रीतोव्यमुञ्चदब्बिन्दून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः॥
अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम्॥

उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥
अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः ॥

भगवान् उन्हें दूर से देख दौड़े और गले लगा के हर्षित हुए। आंखों में आंसू डबडबा आये।

पलंग पर बैठा के पूजा की। पैर धोये और धोवन को मस्तक से लगाया। केवट को भगवान् ने पैर धोने की आज्ञा दी और पैर धोपाने पर उस के भाग्य की सराहना सुरासुरों ने की। पर भक्त सुदामा के पैर भगवान् ने धोये और जलों को मस्तक स्पर्श कराया। भागवत् के श्लोक में भगवान् का विशेषण यहां लोकपावनः लिखा है। जो सबको पवित्र करने वाले हैं वे भी पादावनेजन जल को मस्तक पर धारण करते हैं भगवान् सा भक्तवत्सल और दीनबन्धु इस लोक में और कहां मिलेगा। सुदामा के भाग्य को सराहें कि उनकी भक्ति को ! अथवा भगवान् की भक्तवत्सलता को !

पैर धोते समय का वर्णन नरोत्तमदास जी करते हैं:-

ऐसे बेहाल बवाइन सों भये कण्टक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महादुख पायो सखा तुम आये इतै न किते दिन खोये ॥
देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करि के करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुवो नहिं नैननके जलसों पग धोये ॥

जान पड़ता है सुदामा की दशा अत्यन्त हीन थी पर पत्नी के बहुत कहने पर आये थे सो भी क्यों !

अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ।

चलो इनका कहा करदें। परम लाभ तो भगवत् का दर्शन होगा।

सुदामा ने सत्कार पाया भोजन पाया विश्राम किया। पङ्खा झला गया। सत्कार देख सब चमत्कृत होते थे। यह कौन अद्भुत बड़े भाई के समान गले लगाया गया। विश्राम कर विश्रम्भालाप को भगवान् बैठे। पुरानी बातें याद आई जब गुरु जी के यहां दोनों पढ़ते थे। एक बार लकड़ी लाने को दोनों जन भेजे गये थे। बन में आँधी आई और पानी साथ ही सूर्यास्त कैसी ठराट थी। कांपते २ रात बीती। प्रातःकाल खोजते गुरु जी स्वयं आप-हुंचे। आप बीती की याद आई, क्यों भगवान् को स्नेह न हो भगवान् ने पूछा कि तुमने विवाह किया! तुम्हारा अकाम मन गृहस्थी में ऐसे ही न लगता था। धन की भी तुम्हें अभिलाषा न थी। आह कैसी गप्पाष्टक बैठाई भगवान् ने ! भागवत् दशम स्कन्ध के ८० और ८१ सर्ग भावों से भरे पड़े हैं जो चाहे और समझ सके वह पढ़े और समझे। भगवान् ने हंसते २ पूछा। मेरे लिये कुछ भेंट लाये हो ? थोड़ा भी मुझे बहुत होगा।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

प्रेम पूर्वक दिया तुलसी दल फल फूल जल मुझे प्रिय है। सुदामा भगवान् का अतुल ऐश्वर्य और विभव देख रहे थे। क्या देते ? लाज में डूब गये। भगवान् जान गये। धन की अभिलाषा से नहीं आये स्त्री के कहने से आये हैं। पोटली खींच ली। पूछा इसमें क्या है ? जीर्ण कपड़ा फट गया। भगवान ने सुदामा के तन्दुल मूठी में भर के मुख में डाल दिये। और न जाने क्या २ दे डाला। सुदामा को कुछ विदित ही न हुआ वे प्रातः उठ बिदा माँग लौट पड़े। धन माँगते न बना दर्शन सुख से छक गये थे। उनके सत्कार को सराहते जाते थे। धन

को याद पड़ी तो थी संतोष किया।

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत्।
इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरिनाददात् ॥

अर्थात् यह निर्धन ब्राह्मण धन पाके अज्ञलित हो मुझे संभव है भूल जावे। इसी से दया करके मुझे धन न दिया। भगवद्भक्त को ईश्वर से स्नेह होता है। धन ऐश्वर्य तुच्छ प्रतीत होते हैं। पर भगवान् ने धन पत्नी के पास भेज दिया था लौटने पर सुदामा "मन्दिर देखि डरे॥"

सन्त टालसटाय के विचार

१. चीन के एक ऋषि से प्रश्न किया गया "ज्ञान क्या है"?

उसने उत्तर दिया? "मनुष्यों को जानना।"

उससे फिर प्रश्न किया गया, "और नेकी क्या है? "उसने कहा मनुष्यों से प्रेम करना"।

२. अपनी योनि के नियम के अनुसार जीवन व्यतीत करते हुए एक पक्षी का उड़ना, सांप का रेंगना, मछली का तैरना और मनुष्य का प्रेम करना आवश्यक है। और इसलिए यदि कोई मनुष्य मनुष्यों से प्रेम करने के बजाय उनको दुःखी करता है तो उसका कर्म ठीक उतना ही विपरीत है जितना कि एक पक्षी का तैरना और मछली का उड़ना॥

३. यदि हम उनसे ही प्रेम करते हैं कि जिनको हम पसन्द करते हैं या जो हमारी बड़ाई करते हैं या हमको लाभ पहुंचाते हैं तो हम अपने लिए और अपने लाभ के लिए ही प्यार करते हैं। असली प्रेम वह है जो अपने लिए नहीं किया जाता और वह ही असली भलाई है जो हम अपने लिए न करके उनके लिए करें कि जिनसे हम प्रेम करते हैं। जब हम किसी आदमी से इसलिए प्रेम न करके कि वह हमारे मनको भाता है या वह हमारे लिए लाभदायक है, यह अनुभव करके कि उसमें भी वही आत्मा है जो हमारे अन्दर है उससे प्रेम करते हैं तो ही वह सच्चा प्रेम है॥

४. जब कभी कोई आदमी तुमको दुःखी करता है, और तुमको उससे द्वेष हो जाता है तो इस बातको याद रखने का प्रयत्न करो कि जिसने तुमको दुःखी किया है उसमें भी उसी परमात्मा का वास है जिसका तुम्हारे हृदय में है।

५. जब हालात तुम्हारे विरुद्ध हो जायं और तुम्हारा जीवन दुःखी होजाय और तुम आने वाले दुःख से डर जाओ तो यह विचार करो कि मैं शोक नहीं करूंगा हर एक आदमी से प्रेमकरना जो मिलेगा और फिर जो कुछ हो सो होने दो। इस प्रकार जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करो और फिर तुम देखोगे कि शोक के बादल किस तरह दूर हो जाते हैं और तुम अभय होजाते हो।

६. वह आदमी दया और हंसी का पात्र हो जाता है जो बगल में लड़का होते हुए शहर में ढंढोरा फेरता है। इसी प्रकार वह मनुष्य दया और हंसी का पात्र है जो आनंद की खोजमें फिरता है और यह नहीं जानता कि वह आनंद उस प्रेम में स्थित है जिससे उसका हृदय भरा हुआ है।

७ यदि तुम अपने आपको ऐसी शिक्षा नहीं दे सकते कि परोपकार करने लिये सदैव इस प्रकार अवसरकी तलाश में रहो जैसे शिकारी शिकार की तलाश में रहता है तो भी कमसे कम जो अवसर

मिलजाय उसको हाथ से मत खोओ।

८. मनुष्यों के साथ दयाका बर्ताव करना कर्तव्य है यदि तुम किसी आदमी के साथ दया नहीं करते तो तुम अपने महान् कर्तव्य से गिरते हो।

९. मनुष्य तभी आनंद में रह सकता है जब कि वह इसे मनुष्यों के साथ और परमात्मा के साथ समता से वर्ते। परन्तु आदमी अपने शरीर की भलाई चाहता है और इसीलिये वह धोखे में रहता है और जब मनुष्य आत्मा के लिये जीवित रह कर शरीर के लिये जीवित रहना आरम्भ करता है तो वह मनुष्यों से और परमात्मा से पृथक् हो जाता है।

१०. पाप और पश्चाताप के बिना जीवन नहीं है पाप अण्डे और अनाज के छिलके की भांति है और पापों से छुटकारा बीज को तोड़कर निकलने की भांति है जिसके टूटने से हवा और रोशनी के लगने से पौदा बढ़ना आरम्भ करता है इसी प्रकार मनुष्य का आध्यात्मिक जीवन पापों को तोड़कर बढ़ना आरम्भ करता है और फिर वह परमात्मा सम्बन्धि कर्म करता है।

११. सत्यका मार्ग सीधा और स्वतंत्र है और यदि कोई इसपर चले तो ठोकर नहीं खा सकता जब तुझे यह अनुभव हो कि तुझे सांसारिक कामों की चिन्ता है तो समझले कि तू सत्यमार्ग से गिरगया है।

१२. क्या शरीरों ने मनुष्यों को एक दूसरे से पृथक् नहीं कर दिया? शरीर के बिना जीवन नहीं और जीवन शरीर से पृथक् होने में है।

१३. हममें बुराइयाँ हैं और वे बुराइयाँ हमारी मुख्य बुराइयों के आश्रित हैं और ये बुराइयां नष्ट हो जांयगी जब हम मुख्य दोषों को छोड़ देंगे जिस प्रकार तने को काटने पर वृक्ष की टहनियां गिर पड़ती हैं॥

सुख व शान्ति

(भौतिक विज्ञान से या भक्ति से)

गतांक से आगे।

महात्मा जी ने रात्रि को भोजन न करके केवल डेढ़ पाव दुग्ध पान किया और शीघ्र ही सोगए। फिर ३ बजे जब कि संसारी-जन कि जिनके मन और शरीर माया के चक्र से व्यथित होकर निद्रा देवी की गोद में सुख और शान्ति का पान कर रहे थे महात्मा उठे और शौच स्नान की क्रिया से निवृत्त होकर ध्यान परायण होगए। वह सुर्योदय तक बराबर एक आसन पर बैठे रहे और उषा काल होने पर परमात्मा की स्तुति और प्रार्थना के श्लोक व मंत्र उच्चारण करने लगे। डाकूर सिंहका स्वभाव सूर्योदय के पश्चात् उठने का था परन्तु एक तो महात्मा जी की सेवा का चित्त में खयाल था दूसरे ईश्वर स्तुति की आवाज कानमें पहुंची, वह झट से उठकर खड़ा हुआ और नौकर से पानी मंगा हाथ मुंह धोकर महात्मा जी की सेवा में उपस्थित होगया। दो चार मिनट बैठकर स्तुति सुनी, इतने ही में महात्मा जी ने आंखे खोलीं और कुशल पूछ कर शौच स्नान से निवृत्त होने की आज्ञा दी।

डाक्टर उठकर चला गया और महात्मा जी उपनिषद् का पाठ करने लगे। डाक्टर शीघ्र ही इन क्रियाओं से निवृत्त होकर वापिस आया और जल पान करने के लिए प्रार्थना की। महात्मा जी ने उत्तर दिया कि इस समय कुछ इच्छा नहीं है दस बजे के लगभग भिक्षा ग्रहण करेंगे। तुम चाय पानी से निवृत्त होकर आजाओ।

डाक्टर शीघ्र ही चाय और रोटी खाकर उपस्थित होगया।

१०—प्रिय [illegible]सिंह मालूम होता है तुमने संसार के लोगों के सुख व दुःख की तरफ ध्यान ही नहीं दिया है और इसका मुख्य कारण यह है कि तुमने अपने जीवन की समस्या पर भी कभी विचार नहीं किया है। यह नियम है कि जो मनुष्य जितना अपने को जानता है उतना ही दूसरे के जान सकता है। तुमने यूरोप के प्रायः सब ही देश देखे हैं वहां की बाह्य चमक दमक देख कर तुम लट्टू हो रहे हो और तुम्हारा यह खयाल है कि यह लोग बहुत सुखी व शान्त हैं और इनकी उन्नति का कारण साइंस है परन्तु सचाई यह है कि साइंस के कारण ही संसार में दुःख और अशान्ति की वृद्धि हुई है और जितना२ साइंस की उन्नति होगी उतना ही दुःख बढ़ेगा। प्रकृति की शक्ति को जानकर उससे काम लेना ही साइंस कहलाती है। विज्ञान वेत्ता प्रकृति पर काबू पाना चाहते हैं। यह हवा, पानी, सूर्य आकाश आदि सब से काम लेना चाहते हैं और जब किसी तत्व पर इनका थोड़ा बहुत अधिकार होजाता है तो अपने चित्त में बहुत प्रसन्न होते हैं। प्रसन्नता होनी भी चाहिए अपने किए कर्म्म का आत्मा को आनन्द आता है, कारण कर्म्मों के द्वारा आत्मा का विकाश होता है अथवा आत्मा कर्म्मों के द्वार अपना विकाश कर रहा है। बात एक ही है केवल शब्दों का हेर फेर है। फिर जो कर्म्म जितने समय से किया जाता है वह उतना ही तीव्र और सूक्ष्म होता है और आत्मा के व्यापक होने से उसका अन्तर, बाह्य उतना ही प्रभाव पड़ता है। इसलिये जो विज्ञानवेत्ता एकान्त स्थानों में यथा शक्ति ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर कर्म्मयोग व विचार योग में तल्लीन रह कर व्यापक भाव से कर्म्म करते हैं उसका फल भी विश्वव्यापी होता है और इन विज्ञान वेत्ताओं के यह कर्म्म प्रकृति पर किए जाते हैं। इस कारण उन कर्म्मों से प्रकृति पर भीषण आघात पहुंचना अवश्यम्भावी है और आघात का फल अशान्ति और दुःख के सिवाय और क्या हो सकता है? फिर इन कर्म्मों से शान्ति की आशा रखना मनुष्य का अपना भ्रम और अज्ञान ही है। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष देख लेना चाहिए। किसी देश में चले जाइए अथवा किसी परिवार में पधारिए या किसी व्यक्ति विशेष के हृदय में घुस जाइए और यदि कोई भद्र पुरुष ऐसा नहीं मिलता है जो हृदय में प्रवेश होजाने का अवसर प्रदान करे तो लोगों के चेहरों को पढ़ लीजिए इसमें यदि किसी साधु महात्मा के सत्संग करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है कि जिनकी कृपा से मनुष्य की आन्तरिक दृष्टि से वह अवस्था प्रत्यक्ष होजावे तो चेहरे को पढ़ लीजिए उससे भी बहुत कुछ ठीक पता लग सकेगा और वह यह होगा कि संसार का यह विशेष भाग दुःखी और अशान्त दिखाई देगा और होना भी ऐसा ही चाहिए था। इतना ही नहीं अधिक तो और भी [illegible]

दृष्टि गोचर होता है। साइंस के अधिकतर कर्मों के समूह का विशेष भाग तो बड़ी तेज़ी से एक दूसरे के नाश के उपायों के कारणों की खोज और उनके संग्रह ही में लगा हुआ मनुष्य अपने अज्ञान के कारण दूर की बात प्रत्यक्ष नहीं देख सकता है इस से लापरवाह रहता है अन्यथा विचार से देखा जावे तो फल स्पष्ट ही दिखाई देता है। यह सब साइंस की कृपा है। प्रकृति में जितने मनुष्यों के मन व बुद्धि अधिक रमण करेंगे उतना ही विक्षेप को प्राप्त होंगे।

डा०-महाराज बात तो आप ठीक कह रहे हैं चाहे आपके समस्त विचार पूर्ण न हों परन्तु अधिकतर तो यही बात मालूम होती है। निश्चय ही जो आविष्कार इस समय होरहे हैं वह बड़े विनाशकारी हैं परन्तु साथ ही ऐसे भी आविष्कार होरहे हैं जो मनुष्य के लिए सर्वत्र उपयोगी हैं और उनसे सिवाय लाभ के कोई भी हानि नहीं है। (Constructive) निर्माण और distructive ध्वंस का प्रोग्राम तो प्रत्येक कर्म्म में स्वयं वर्तमान रहता है। जिन कामों को परमात्मा के काम कहे जाते हैं उनमें भी तो यह सिलसिला मौजूद है। जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश अवश्य है। फिर यदि साइंस के काम भी ऐसे ही हों तो आश्चर्य की क्या बात है? परन्तु आप देखिए कि साइंस की कृपा से मनुष्य को कितनी आसानी होगई है। उसका ज्ञान कितना बढ़गया है। साधारण मनुष्य कुछ घण्टों में हजारों मील जा सकता है, वहाँ के हालात सुन व देख सकता है। इनसे तो लाभही लाभ है।

म०-प्रिय हरीसिंह यह भी तुम्हारी भूल ही है। दूर के हालात सुनना या देखना या बहुत शीघ्र दूर के स्थानों में चले जाने में क्या सुख शान्ति रक्खी है? फिर चंचलता व चपलता का ही दूसरा नाम है और चंचलता में सुख व शांति कहां? सुख व शान्ति तो एक रस रहने में है। क्षोभ रहित रहने का नाम शान्ति है फिर यह आना जाना भी बिलकुल उलटा, यह तो आसुरी कर्म है इन से तो केवल मानसिक विक्षेप ही उत्पन्न नहीं होता वरन यह तो शरीरों को भी हानि पहुंचाते व उनके क्षय का भी कारण हैं। फिर इन बातों से लाभ क्या है? क्या जो बहुत संसार देख चुके हैं वह सुखी हैं? क्या मोटर में अधिक बैठने वालों के स्वास्थ्य अच्छे हैं? क्या उनके चित्त कोमल, दयालु और प्रेम से भरे हैं, क्या वह राग व द्वेष से छुटे हुए हैं, क्या उनके चित्त में एक से एक अधिक वेग नहीं उठते? मन के हालात जानने में भी क्या आनन्द है, जब अपने मन के हालात ही हमको रात दिन तंग करते हैं फिर दूसरों के हालात को दिमाग में भरने से क्या अमृत की वर्षा हो सकती है? यह माया के चमत्कार बिलकुल झूठे और इस शान्त व अनादि आत्मा के विक्षेप के ही कारण हैं।

डा०-महाराज चाहे आपका सिद्धान्त ख्याली पुलाव बेशक हो परन्तु आपकी बातों से चित्त में आनन्द बहुत होता है। ऐसा मालूम होता है की मैं सोते से जाग रहा हूं परन्तु विचारों से मेरे चित्त में एक तूफान सा उठ रहा है। क्या मेरा अब तक का समस्त परिश्रम व्यर्थ ही गया? क्या मेरा त्याग भी निष्फल है? जो मार्ग मैंने ग्रहण किया है क्या वह मेरी अधोगति का कारण है क्या मैं अपने अज्ञान के कारण

सैकड़ों नवयुवकों का जीवन अशान्त और दुखी बनाने का कारण हुआ हूं? क्या मेरा अब तक का जीवन एक मिथ्या स्वप्नमात्र था या मैं इस समय कोई बड़ा भारी स्वप्न देख रहा हूं! जहाँ शान्ति है वहां घोर अशान्ति का भी राज्य मेरे मस्तिष्क में स्थापित होता जारहा है। आप इतनी दया अवश्य करें कि जब तक मेरी समस्त शंकाएं निवारण न हों, आप यहां ही विराजने की दया करें।

म०—यह सब भगवान् के आधीन है अच्छा अब भोजन पानी का समय होगया है सन्ध्या को फिर धर्म्मचर्चा होगी।

अपूर्ण

बसन्त

(ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी)

रूसन नवेली अलबेली छटकी है छवि,
दसन वदन छकि मूरतहू कन्त की।
प्रणय सहेली बहु भेली भई मृदुमति,
गवनि ठवनि हुहुं आजे हिदहन्त की॥
कोरहु निकोर करि भोर विलसाय रही,
पेखहु अशोगी थाहि मूरतहु दन्त की।
सौरभ पराग नवरागहू सुहाग भरि,
चहुं ठौर व्यापि 'प्रभु' शोभा या बसंत की॥

शारीरकोपनिषत्।

पृथ्वी आदि महाभूतों का जो समूह है वह शरीर है। जो कठिनता है वह पृथ्वी है, जो द्रव्य है वह जल है, उष्णता तेज है, जो गमन करता है वह वायु है, और जो पोल है वह आकाश है। श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियें हैं। आकाश से श्रोत्र, वायु से त्वचा, अग्नि से चक्षु, जल से जिह्वा और पृथ्वी से घ्राण इन्द्रिय हैं। इस प्रकार इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह विषय हैं। यह पृथ्वी आदि महाभूतों में क्रम से उत्पन्न हुए हैं। अन्तःकरण के चार भेद हैं। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त इनके विषय क्रमानुसार यह हैं। संकल्प, विकल्प, निश्चय, अभिमान और वस्तु के स्वरूप का ज्ञान॥ मन का स्थान कण्ठ के नीचे, बुद्धि का मुख, अहंकार हृदय और चित्त का नाभि है। हड्डियें, चाम, नाडियें, रोम और मांस यह पृथ्वी के भाग हैं॥ मूत्र, कफ, खून, वीर्य्य और पसीना जल के भाग हैं। क्षुधा, तृषा, आलस्य, मोह, मैथुन यह अग्नि के अंश हैं। चलना, आँखों का खोलना व बन्द करना यह वायु के अंश॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह पृथ्वी के गुण हैं॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस यह जल के गुण हैं। शब्द, स्पर्श और रूप यह अग्नि के गुण हैं। शब्द, स्पर्श वायु के गुण हैं और केवल शब्द आकाश का गुण है॥

सात्विक, राजस, और तामस यह तीन गुण भी इन्ही महाभूतों के हैं॥ सत्वगुण:—अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्य, संग्रह न करना, क्रोध न करना, गुरु की सेवा, पवित्रता, सन्तोष, सरलता, अभिमान न करना, दम्भ (कपट) न करना

और आस्तिकता ॥ मैं करता हूं, मैं भोक्ता हूं, मैं कहता हूं, जो ऐसा अभिमान रखता है उसके लिए ब्रह्मवेत्ताओं का कथन है कि यह राजसी के गुण हैं ॥ निद्रा, आलस्य, मोह, राग, मैथुन, चोरी यह गुण तामस के ब्रह्मवादियों ने कहे हैं ॥ सात्विक उत्तम, राजस मध्यम और तामस अधम गुण हैं ॥

सत्य ज्ञान (ब्रह्म का ज्ञान) सात्विक ज्ञान है। धर्म्म का ज्ञान राजस ज्ञान है और तिमिरज्ञान तामस ज्ञान है ॥

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या यह चार अवस्थाएं हैं ॥ ज्ञान इन्द्रियें, कर्म्म इन्द्रियें, चार भान्ति का अन्तःकरण यह चौदह सहित जाग्रत अवस्था है। अन्तःकरण चतुष्टय युक्त स्वप्नावस्था है ॥ चित्त की एकाग्र वृत्ति का नाम सुषुप्ति है। केवल जीव युक्त अवस्था का नाम तुर्या अवस्था है।

पंच ज्ञान इन्द्रियें, पंच कर्म्म इन्द्रियें, पंच प्राण, मन और बुद्धि इन १७ का सूक्ष्म शरीर या लिङ्ग शरीर कहाता है। मन, बुद्धि, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी यह प्रकृति के आठ विकार हैं।

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, गुदा, लिङ्ग, पैर, वाक्, हाथ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह तेईस प्रकृति के तत्व हैं। चौबीसवां अव्यक्त प्रधान पुरुष परे है।

इति शारीरिकोपनिषत्समाप्ता ॥

प्राप्ति स्वीकार

गीता में भक्ति योग – ले० श्री वियोगी हरि प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर, इसमें गीता के १२वें अध्याय पर सुन्दर टीका लिखी गई है। स्थान स्थान पर श्लोकों के भाव से मिलने वाले भजन भी दिये गये हैं। मूल्य ।=)

भागवतरत्न प्रह्लाद – लेखक चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा तथा इन्द्र नारायण द्विवेदी। प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर। यह परम भागवत् भक्तराज प्रह्लाद के चरित्र का परम सुन्दर संग्रह है। भागवतों के संग्रह योग्य पुस्तक है। मूल्य १)

सेवाके मन्त्र – यह श्री अरण्डेल की The way of service का हिन्दी अनुवाद है। प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर। मूल्य ।)॥

भजन संग्रह (द्वितीय भाग) प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर। इसमें रैदास, गरीबदास, मलूकदास, गुरुनानक आदि महात्माओं के शब्दों का उत्तम संग्रह है। मूल्य ≈)

शक्ति – इसके प्रथम वर्ष की पहिली संख्या हमारे सन्मुख है। यह पत्रिका शक्ति कार्यालय लखनऊ से प्रकाशित होती है। इसकी प्रधान सम्पादिका श्रीमती फूलवती शुक्ल एम० ए० हैं। वार्षिक मूल्य ४) है पत्र का सम्पादन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। स्त्री समाजसुधार सम्बन्धी विभाग ही पृथक् कर दिया गया है। इस विभाग में केवल स्त्रियों के ही लेख प्रकाशित होते हैं। एक विभाग बालकों के लिये भी रक्खा गया है। कहने का तात्पर्य यह है की वैसे तो पत्र प्रत्येक हिन्दी भाषा भाषी के काम की चीज़ है फिर भी स्त्रियों और बालकों के लिये तो यह अत्युत्तम पत्र है। हम 'शक्ति' का हृदय से स्वागत करते हैं।

(सम्पादक)

भजन

मन मूरिखा तैं योंहीं जनम गँवायो ॥ टेक ॥
सांई केरी सेवा न कीन्हीं,
इह कलि काहे कू आयो ॥ १ ॥
जिन बातन तेरी छूटिक नाहीं,
सोई मन तेरो भायो ॥ २ ॥
कामी ह्वै विषया संग लाग्यो,
रोम रोम लपटायो ॥ ३ ॥
कुछ इक चेति विचारी देखो,
कहा पाप जिय लायो ॥ ४ ॥
दादूदास भजन करि लीजे,
सुपिने जग डहकायो ॥ ५ ॥

२

अब राम नाम कहि गावैगा,
तब भेद अभेद समावैगा ॥ टेक ॥
जे सुख ह्वै या रस के परसे,
सो सुख का कहि धावैगा ॥ १ ॥
गुरु परसाद भई अनुभौ मति,
विष अमृत सम आवैगा ॥ २ ॥
कहै रैदास मेटि आपा पर,
तब वा ठौरहिं पावैगा ॥ ३ ॥

३

जो तुम तोरो राम मैं नाहिं तोरौं,
तुमसे तोरि कवन से जोरौं ॥ टेक ॥
तीरथ बरत न करौं अन्देसा,
तुम्हरे चरण कमलका भरोसा ॥ १ ॥
जहं जहं जाओं तुम्हरी पूजा,
तुम सा देव और न दूजा ॥ २ ॥
मैं अपनो मन हरि सों जोरयो,
हरि सो जोरि सबन सों तोरयो ॥ ३ ॥
सब ही पहर तुम्हारी आशा,
मन क्रम वचन कहै रैदासा ॥ ४ ॥

४

अब कैसे छूटै नाम रट लागी ॥ टेक ॥
प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी,
जाकी अंग अंग बास समानी ॥ १ ॥
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा,
जैसे चितवत चन्द चकोरा ॥ २ ॥
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती,
जाकी जोति बरै दिन राती ॥ ३ ॥
प्रभुजी तुम मोती हम धागा,
जैसे सोनहि मिलत सुहागा ॥ ४ ॥
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा,
ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥ ५ ॥

५

दीनबन्धु दीनानाथ मेरी तन हेरिये ॥ टेक ॥
भाई नाहिं बन्धु नाहिं कुटुम परिवार नाहीं,
ऐसा कोई मित्र नाहिं जाके ढिग जाइये ॥ १ ॥
सोने की सलैया नाहिं, रूपे की रुपैया नाहिं,
कौड़ी पैसा गांठ नाहिं जासे कछु लीजिये ॥ २ ॥
खेती नाहिं बारी नाहिं बनिज व्योपार नाहिं,
ऐसा कोई साहु नाहिं जासों कछु मांगिये ॥ ३ ॥
कहत मलूकदास छोड़िदे पराई आस,
रामधनी पाइ के अब काकी सरन जाइये ॥ ४ ॥

६

साधो निंदक मित्र हमारा ॥ टेक ॥
निन्दक को निकटे ही राखौं,
होन न देऊं नियारा ॥ १ ॥

पाछे निंदा कारि अघ धोवै,
सुनि मन मिटै विकारा ।
जैसे सोना तापि अगिन में,
निरमल करै सोनारा ॥ २ ॥
घन अहरन कसि हीरा निबटै,
कीमत लच्छ हजारा ।
ऐसे जांचत दुष्ट सन्त कूं,
करन जगत उजियारा ॥ ३ ॥
जोग यज्ञ जप पाप कटन हितु,
करै सकल संसारा ।
बिन करनी मम कर्म कठिन सब,
मेटै निन्दक प्यारा ॥ ४ ॥
सुखी रहो निन्दक जग माहीं,
रोग न हो तन सारा ।
हमरी निन्दा करने वाला,
उतरै भव निधि पारा ॥ ५ ॥
निन्दक के चरणों की अस्तुति,
भाखौं बारम्बारा ।
चरन दास कहै सुनियो साधो,
निन्दक साधक भारा ॥ ६ ॥

७

हरिको ऐसोई सब खेल ।
मृग तृष्ना जग व्याप रह्यो है, कहूं बिजोरौ न बेल ॥
धनमद जोबनमद और राजमद, ज्यौं पंछिन में डेल ।
कह हरिदास यहै जिय जानौ, तीरथ कोसो मेल ॥

८

यही मन सब रसको रस सार ।
लोक बेद कुल करमै तजिये, भजिये नित्य बिहार ॥१
गृह कामिनि कंचन धन त्यागौ, सुमिरौ स्याम उदार ।
कहि हरिदास रीति संतनकी, गादीको अधिकार ॥२

९

बावल कैसे बिसरो जाई ।
जदि मैं पति संग रल खेलूँगी, आपा धरम समाई ॥टेक॥
सतगुरु मेरे किरपा कीनी, उत्तम बर परणाई ।
अब मेरे साँई को सरम पड़ैगी, लेगा हृदै लगाई ॥१॥
थे जानराय मैं बाली-भोली, थे निरमल मैं मैली ।
थे बतलाओ मैं बोल न जाणूं, भेद न सकूं सहेली ॥२
थे ब्रह्मभाव मैं आतम कन्या समझ न जानूं बानी ।
दरिया कहै पति पूरा पाया, यह निश्चै कर जानी ॥३

१०

काहे रे बन खोजन जाई ।
सर्व निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ॥ १ ॥
पुष्प मध्य ज्यौं बास बसत है, मुकर माहिं जस छाई ।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर, घट ही खोजो भाई ॥२॥
बाहर भीतर एकै जानो, यह गुरु ज्ञान बताई ।
जन नानक बिन आपा चीन्हे, मिटै न भ्रमकी काई ॥३॥

११

दिन दूलह मेरो कुँवर कन्हैया ।
नित प्रति सखा सिंगार सँवारत,
नित आरती उतारति मैया ॥ १ ॥
नितप्रति गीत वाद्य मंगल धुनि,
नित सुर मुनि बरदिरद कहैया ।
सिरपर श्रीव्रजराज राजपित,
तैसेई ढिग बलनिधि बल भैया ॥ २ ॥
नितप्रति रास बिलास ब्याह बिधि,
नित सुरतिय सुरनि बरसैया ।
नित नव नव आनन्द वारिनिधि,
नित ही गदाधर लेत बलैया ॥ ३ ॥